श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० १

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

प्रथम भाग

अनुवादकः—

मगनलाल जैन



प्रकाशकः—

श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला

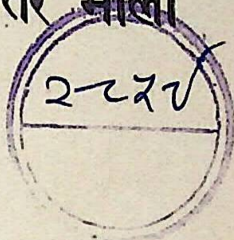
अंतर्गत—मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

बम्बई

श्री सेठी दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० १

श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

प्रथम भाग











अनुवादकः—

मगनलाल जैन



प्रकाशकः—

श्री सेठी दि० जैन ग्रन्थमाला

अंतर्गत—मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट

६२. धनजी स्ट्रीट, बम्बई. ३

प्रथम संस्करण वीर नि० सं० २४८३
प्रति १०००

प्रथम भाग मूल्य ।।-)

मुद्रक : नेमीचन्द बाकलीवाल
कमल प्रिंटर्स, मदनगंज (किशनगढ़)



પૂજ્ય અધ્યાત્મયોગીશ્રી કાનજીસ્વામી
સોનગઢ–સૌરાષ્ટ્ર.



अर्पण

परम कृपालु पूज्य

आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के

कर कमल में

जिनके उत्कृष्ट अमृतमय उपदेश को प्राप्त कर इस पामर ने अपने अज्ञान अंधकार को दूर करने का यथार्थ मार्ग प्राप्त किया है ऐसे महान महान उपकारी सत् धर्म प्रवर्तक पुज्य श्री कानजी स्वामी के कर कमलों में तीर्थराज श्री सम्मेद शिखरजी की पुनीत यात्रा के अवसर पर, अत्यन्त आदर एवं भक्ति पूर्वक यह पुस्तिका अर्पण करता हूँ और भावना करता हूँ कि आपके बताये मार्ग पर निश्चलरूप से चल कर निःश्रेयस अवस्था को प्राप्त करूं।

विनम्र सेवक

महेन्द्रकुमार सेठी



मुख्य विषय

इन प्रकरणों के गौण विषयों की अनुक्रमणिका तथा आधारभूत ग्रन्थों की सूची आगे दी गई है।



निवेदन

जब कि मैं सावन मास सं० २०१३ में प्रौढ़ शिक्षणवर्ग में अभ्यास करने के लिये सोनगढ़ गया था और वर्ग में अभ्यास करता था उस समय अभ्यासियों को पूछे जाने वाले प्रश्नों को जिसप्रकार सुन्दर रीति से समझाया जाता था वह प्रश्नोत्तर की शैली समझ कर मेरे हृदय में यह भाव जागृत हुआ कि अगर ये प्रश्नोत्तर भले प्रकार से संकलन करके स्कूल एवं पाठशालाओं में जैनधर्म की शिक्षा लेने वाले शिक्षार्थियों को सुलभ कर दिये जावें तो सत् धर्म की भले प्रकार से प्रभावना हो और बहुत लोगों को लाभ मिल सके। यह भाव जागृत हुए थे कि मालुम हुआ श्रद्धेय वयोवृद्ध श्री रामजी भाई माणकचन्दजी दोशी संपादक आत्मधर्म एवं प्रमुख श्री जैन स्वा० मंदिर ने बहुत प्रयास करके लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका के प्रश्नों पर सर्वांग सुन्दर पुस्तिका गुजराती में तैयार की है और वह छपने भी प्रेस में चली गई है। यह जानकर मुझे बहुत हर्ष हुआ और मैंने उसको हिंदी अनुवाद करने के लिये भेज दिया। इसी समय मेरा यह भाव जागृत हुआ कि एक ग्रंथमाला चालू की जावे जिसका नाम सेठी दि० जैन ग्रंथमाला हो तथा वह भले प्रकार से आगामी भी चलती रहे। उसके लिये मैंने मेरे पूज्य श्री पिताजी की आज्ञानुसार एक ट्रस्ट बनाने का निर्णय किया जिसका नाम श्री मीठालाल महेन्द्रकुमार सेठी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट रखा। उसी ट्रस्ट के अंतर्गत यह सेठी दि० जैन ग्रंथमाला चालू की है जिसके कि पहले पुप के रूप में यह जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला का प्रथम भाग प्रकाशित हुआ है अभी इस प्रश्नोत्तरमाला के द्वितीय भाग एवं तृतीय भाग

और प्रकाशित हो रहे हैं जो कि प्रेस में जा चुके हैं। आशा है जल्दी ही पाठकों के हाथ में पहुँच जावेंगे।

इसके प्रथम भाग में द्रव्य, गुण, पर्याय तथा अभाव इन चार विषयों से सम्बन्धित अनेक प्रकार के प्रश्न उठाकर उनके आगम न्याय युक्ति एवं स्वानुभव सहित बहुत ही सुन्दर एवं विस्तृत उत्तर दिये हैं—

दूसरे भाग में छह कारक, निमित्त उपादान तथा सात तत्त्व और नव पदार्थों का बहुत सुन्दर प्रश्नोत्तर रूप में विवेचन आवेगा—तथा तीसरे भाग में प्रमाण नय निक्षेप, अनेकान्त और स्याद्वाद तथा मोक्षमार्ग के ऊपर बहुत विशद विवेचन है। इस प्रकार ये तीनों भागों की उपयोगिता तो आपको इस प्रथम भाग के पढने से ही हो जावेगी इतनी बड़ी विशद पुस्तक को ३ भाग में छपाने का मेरा खाश उद्देश्य यही है कि जैन समाज की शिक्षण संस्थाएें इन पुस्तकों को धर्म की शिक्षा के लिये कक्षाओं में काम ले सकें तथा अलग अलग विषयों पर मनन करने के लिये अभ्यासियों को अलग अलग पुस्तक रखने में सुगमता हो।

अतः मेरी अभिलाषा सफल हुई तो अपना प्रयास सफल समझूंगा। इस कार्य के पूरा करने में भाई श्री नेमीचन्दजी पाटनी किशनगढ़वाले भाई श्री हरिलालजी जीवराजजी भायाणी भावनगर वालों ने एवं ब्रह्मचारी भाई श्री गुलाबचन्दजी ने बहुत मेहनत की है उसके लिये मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ।

निवेदक

महेन्द्रकुमार सेठी

शुद्धिपत्र

पत्र	ला०	अशुद्धि	शुद्धि
११	४	चेतांतर	चेत्रांतर
,,	८	भागवती	भाववती
१५	१५	व्य ध्रौव्य	व्यय ध्रौव्य
१७	२४	धव	ध्रुव
२८	६	प्रक	प्रत्येक
४२	२०	अकर	आकार
४३	२३	गुणोंकी	×
४५	१०	अत्पज्ञों	अल्पज्ञों
,,	२०	धारा ही	धारावाही
४६	६	भावको	भावकी
,,	२३-२४	वस्तुक न्यक्ष	वस्तु को प्रत्यक्ष
५४	१२	प्रर	पर
,,	२३	की शुद्ध	की भी शुद्ध
५७	६	जौव	जीव
६४	३	रुचक	रुचकादि
६६	१०	मायता	मान्यता
७६	२०	यिना	विना
७८	६	आकूलता	आकुलता
७६	१६	डनकी	उनकी
८५	१७	मिज	निज
,,	२३	तीना	तीनों
८६	१३	उममें	उसमें
८७	२२	के	केवलज्ञान सिन्धुमें
६३	६	को	की
१००	१८	पर	परका

प्रश्न-सूची

[आ]

[घ]

[च]

[छ]

[ज]

[ध]

[ल]

[व]



❀ श्री वीतरागाय नमः ❀



श्री जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तर माला

❀ मंगलाचरण ❀

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं॥

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं, ज्ञानादन्यत करोति किम्?
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥

अज्ञानतिमिरान्धानाम्, ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥



प्रकरण पहला

(१) द्रव्य अधिकार

प्रश्न (१)–विश्व* किसे कहते हैं ?

उत्तर:—छह द्रव्योंके समूह को विश्व कहते हैं।

प्रश्न (२)–द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर:—गुणोंके समूहको द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न (३)–गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्यके पूर्ण भागमें और उसकी सर्व अवस्थाओंमें रहे उसे गुण कहते हैं।

प्रश्न (४)–छह द्रव्योंके नाम क्या हैं ?

उत्तर—जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

प्रश्न (५)–जीव द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें चेतना अर्थात् ज्ञान–दर्शनरूप शक्ति हो उसे जीव द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न (६)–पुद्गल* द्रव्य किसे कहते हैं ?

---

* विश्व=समस्त पदार्थ–द्रव्य-गुण-पर्याय।

(श्री प्रवचनसार गाथा १२४ की फुटनोट)

* पुद्गल शब्दका निरुक्ति अर्थ:—

पुद्+गल=पूरयन्ति गलयन्ति इति पुद्गलाः।

(जैन सि० दर्पण)

जो पूरें–एकत्रित हों और पृथक् हों वे पुद्गल।

उत्तर—जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण–यह गुण हों उसे पुद्गल कहते हैं।

प्रश्न (७)–पुद्गल के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—एक परमाणु और दूसरा स्कंध।

प्रश्न (८)–परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसका दूसरा कोई भाग न हो सके ऐसे छोटे से छोटे पुद्–गलको परमाणु कहते हैं।

प्रश्न (९)–स्कंध किसे कहते हैं ?

उत्तर—दो अथवा दो से अधिक परमाणुओंके बंधको स्कंध कहते हैं।

प्रश्न (१०)–धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं गमन करते हुए जीव और पुद्गलों को गमन करने में निमित्त हो उसे धर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे–स्वयं गमन करती हुई मछली को गमन करने में पानी।

प्रश्न (११)–अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो स्वयं गतिपूर्वक स्थितिरूप परिणमित जीव और पुद्गल को स्थिर रहने में निमित्त हो उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे–पथिक को स्थिर रहने में वृक्षकी छाया।

प्रश्न (१२)–अधर्म द्रव्यकी व्याख्यामें कहा है कि जो "गतिपूर्वक स्थिति" करे उसे अधर्म द्रव्य निमित्त है; उसमें से यदि "गति–पूर्वक" शब्दको निकाल दें तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—जो गतिपूर्वक स्थिति करें ऐसे जीव–पुद्गलको ही अधर्म द्रव्य स्थितिमें निमित्त है–ऐसी मर्यादा न रहने से सदैव स्थिर रहनेवाले धर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्योंको भी स्थिति में अधर्म द्रव्यका निमित्तपना आजायेगा।

प्रश्न (१३)—आकाश द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो जीवादिक पाँच द्रव्योंको रहनेका स्थान देता है उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न (१४)—आकाशके कितने भेद हैं ?

उत्तर—आकाश एक ही अखण्ड द्रव्य है; किन्तु उसमें धर्म-अधर्म द्रव्य स्थित होने से (आकाशके) दो भेद हैं—लोकाकाश और अलोकाकाश।

यदि लोकमें धर्म-अधर्म द्रव्य न होते तो लोक-अलोक ऐसे भेद ही नहीं होते।

(पंचास्तिकाय गा० ८७ टीका)

प्रश्न (१५)—लोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें जीवादिक सर्व द्रव्य होते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं अर्थात् जहाँ तक जीव, अजीव, धर्म, अधर्म और काल—यह पाँच द्रव्य हैं वहाँ तक के आकाशको लोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न (१६)—अलोकाकाश किसे कहते हैं ?

उत्तर—लोकाकाशके बाहर जो अनंत आकाश है—उसे अलोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न (१७)—लोकाकाश और अलोकाकाश—इन दोनों के रंगमें क्या अन्तर है ? दोनों में कौन बड़ा है ?

उत्तर—आकाश द्रव्य अरूपी* होने से उसके रंग नहीं होता आकाश एक अखण्ड द्रव्य है। जितने भागमें छह द्रव्योंका समूह है उतने भागको लोकाकाश कहते हैं। वह छोटा भाग

---

* जो स्पर्श, रस, गंध और वर्ण रहित हो वह अरूपी है।

और शेष चारों ओर अलोकाकाश है, वह लोकाकाश से अनंत गुना है।

प्रश्न (१८)–अलोकाकाशमें कितने द्रव्य हैं और उसके परिणमन में किसका निमित्त है ?

उत्तर—अलोकाकाश में आकाश के अतिरिक्त अन्य कोई द्रव्य नहीं हैं। सम्पूर्ण आकाश द्रव्यके परिणमनमें लोकाकाशमें विद्यमान कालाणु द्रव्य निमित्त हैं।

प्रश्न (१९)–एक आकाशप्रदेशमें एक ही प्रकारके दो द्रव्य कभी साथ नहीं रहते; उस द्रव्यका नाम क्या ?

उत्तर—कालाणु द्रव्य; क्योंकि प्रत्येक कालाणु द्रव्य लोकाकाश के एक–एक प्रदेशमें रत्नराशिके समान एक–एक भिन्न–भिन्न ही रहता है।

प्रश्न (२०)–एक परमाणु जितना छोटा दूसरा कोई द्रव्य है ?

उत्तर–हाँ, कालाणु; क्योंकि परमाणु और कालाणु एक प्रदेशी द्रव्य हैं।

प्रश्न (२१)–प्रदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर–एक पुद्गल परमाणु आकाश का जितना स्थान रोके उतने भागको प्रदेश कहते हैं। उस एक प्रदेश द्वारा सर्व द्रव्यों के क्षेत्रका माप निश्चित् किया जाता है।

प्रश्न (२२)–काल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो अपनी–अपनी अवस्थारूप स्वयं परिणमित होने वाले जीवादिक द्रव्यों को परिणमन में निमित्त हो उसे काल द्रव्य कहते हैं; जैसे—कुम्हार के चाक को घूमने में लोहे की कीली।

प्रश्न (२३)–काल के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—निश्चयकाल और व्यवहारकाल ।

प्रश्न (२४)–निश्चयकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर–कालद्रव्य को निश्चयकाल कहते हैं । लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उतने ही कालद्रव्य हैं और लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य (कालाणु) स्थित है ।

प्रश्न (२५)–व्यवहार काल किसे कहते हैं ?

उत्तर—कालद्रव्य की समय, पल, घड़ी, दिवस, महीना, वर्ष आदि पर्यायों को व्यवहार काल कहते हैं ।

प्रश्न (२६)–जीवादिक द्रव्य कितने-कितने हैं ? और वे कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—जीव द्रव्य अनंत हैं और वे सम्पूर्ण लोकाकाशमें विद्यमान हैं। जीवद्रव्य से अनंतगुने पुद्गल द्रव्य हैं और वे सम्पूर्ण लोकाकाश में भरे हैं। धर्म और अधर्म द्रव्य एक-एक हैं और वे सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हैं। आकाश द्रव्य एक है और वह लोक तथा अलोक में व्याप्त है । कालद्रव्य असंख्यात हैं और वे लोकाकाश में (प्रत्येक प्रदेश में एक-एक इसप्रकार) व्याप्त हैं ।

प्रश्न (२७)–अस्तिकाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—बहुप्रदेशी द्रव्य को अस्तिकाय कहते हैं ।

प्रश्न(२८)–कितने द्रव्य अस्तिकाय हैं ?

उत्तर—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश–यह पाँच द्रव्य "अस्तिकाय" हैं ?

प्रश्न(२९)–कालद्रव्य अस्तिकाय क्यों नहीं है ?

उत्तर—कालद्रव्य एक प्रदेशी है, इसलिये वह अस्तिकाय नहीं है ।

प्रश्न(३०)–पुद्गल परमाणु भी एकप्रदेशी है, तो वह अस्तिकाय कैसे हुआ ?

उत्तर—यद्यपि पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी है, किंतु उस में स्कन्ध-

रूप बनकर बहुप्रदेशी होने की शक्ति है; इसलिये उसे उपचार से अस्तिकाय कहा जाता है।

प्रश्न(३१)–जीवादि छह द्रव्यों में दो भेद किसप्रकार करेंगे ?

उत्तर—(१) जीव, अजीव; (२) रूपी, अरूपी; (३) क्रियावती* शक्ति और भाववती शक्ति वाले; (४) बहु प्रदेशी और एक प्रदेशी।

प्रश्न (३२)–अजीव द्रव्य कौनसे हैं ?

उत्तर—पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल।

प्रश्न (३३)–रूपी का अर्थ क्या ? और अरूपीका क्या ?

उत्तर—जो स्पर्श, रस, गंध और वर्णसहित हो वह रूपी और जो उनसे रहित हो वह अरूपी।

प्रश्न (३४)–छह द्रव्योंमें रूपी कौन हैं और अरूपी कौन ?

उत्तर—एक पुद्गल द्रव्य रूपी है और शेष पाँच अरूपी।

प्रश्न (३५)–आत्माको प्रदेशरूपी असंख्य अवयव मानने से उसके खण्ड होंगे या नहीं ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि आत्मा क्षेत्र द्वारा अखण्डित होने के कारण उसके खण्ड नहीं हो सकते।

(पंचाध्यायी भाग १, गाथा ४१४)

प्रश्न (३६)–जीव, पुद्गल, आकाश और काल को दो–दो भेदों में रखो।

उत्तर—(१) जीव—संसारी और सिद्ध।
(२) पुद्गल—परमाणु और स्कन्ध।
(३) आकाश—लोकाकाश और अलोकाकाश।

---

* देखो, प्रश्न ५२ वाँ।

(४) काल—निश्चयकाल और व्यवहारकाल।

प्रश्न (३७)–जगत में क्षेत्रकी अपेक्षा सबसे बड़ा कौन है ?

उत्तर—आकाश द्रव्य।

प्रश्न (३८)–आत्मा (जीव) के शरीर होता है ? हो तो कैसा होता है ?

उत्तर—नित्य चैतन्यमय अनंतगुणोंका समूह (श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र, सुखादि गुणोंका समाज) वह आत्मा का वास्तविक शरीर है; इसलिये आत्माको "ज्ञान–शरीरी" कहते हैं। संयोगरूप जो जड़ शरीर है वह वास्तवमें आत्माका नहीं किन्तु पुद्गलका है और इसलिये जड़ शरीरको पुद्गलास्तिकाय कहा है।

प्रश्न (३९)–आत्मा के अवयव होते हैं ? होते हैं तो कैसे ?

उत्तर—(१) प्रत्येक आत्माके उसके ज्ञानादि अनंतगुण हैं और प्रत्येक गुण परमार्थतः आत्माका अवयव है, आत्मा उन अवयवोंवाला है। अवयवी है।

(२) क्षेत्र अपेक्षासे प्रत्येक आत्माके अपने अखण्ड असंख्य प्रदेश हैं; उनमें से प्रत्येक प्रदेश आत्माका अवयव है; किन्तु जड़ शरीरके हाथ, पैर आदि जीवके अवयव नहीं हैं; वे तो जड़ शरीर के ही अवयव हैं।

प्रश्न (४०)–इस परसे क्या सिद्धान्त समझें ?

उत्तर—(१) जीव सदैव अरूपी होने से उसके अवयव भी सदैव अरूपी ही हैं, इसलिये किसी भी कालमें निश्चयसे या व्यवहार से हाथ, पैर आदि को चलाना, स्थिर रखना आदि पर द्रव्यकी कोई भी अवस्था जीव नहीं कर सकता—ऐसा निर्णय करना चाहिये।—इसप्रकार पदार्थों की स्वतंत्रताका निर्णय करे

तभी जीव पर से भेद–विज्ञान करके ज्ञाता स्वभाव की श्रद्धा कर सकता है और ज्ञातारूप रह सकता है।

(२) शास्त्रोंमें आत्मा को व्यवहारसे शरीरादि के कर्तृत्वका कथन आता है; उसका अर्थ—"ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तकी अपेक्षासे यह उपचार किया है"—ऐसा समझना चाहिये।
(मोक्षमार्गप्रकाशक अ० ७ पत्र सं० ३६६ प्रकाशक सस्ती ग्रंथ-माला देहली)

(३) निमित्तकी मुख्यतासे कथन आता है किन्तु निमित्तकी मुख्यतासे कार्य नहीं होता—ऐसा व्यवहार कथनका अभिप्राय जानना चाहिये।

प्रश्न (४१)–किस द्रव्यके कितने प्रदेश हैं ?

उत्तर—जीव, धर्म, अधर्म और लोकाकाशके असंख्यात प्रदेश हैं; पुद्गलको संख्यात, असंख्यात और अनंत–इसप्रकार तीनों प्रकार के प्रदेश हैं; कालद्रव्य और पुद्गल परमाणु एक प्रदेशी हैं। आकाश अनंत प्रदेशी है।

प्रश्न (४२)–प्रत्येक जीव कितना बड़ा है ?

उत्तर—प्रत्येक जीव प्रदेशों की संख्या अपेक्षासे लोकाकाश के बराबर असंख्य प्रदेशवाला है, किन्तु संकोच-विस्तारके कारण वह अपने शरीर प्रमाण है, और मुक्त जीव अन्तिम शरीर प्रमाण; किन्तु वह शरीर से किंचित् न्यून आकारका होता है।

प्रश्न (४३)–लोकाकाश के बराबर कौन जीव होता है ?

उत्तर—मोक्ष जानेसे पूर्व केवल समुद्घात* करनेवाला जीव लोकाकाश के बराबर बड़ा होता है।

---

* मूल शरीर को छोड़े बिना आत्माके प्रदेशों का बाहर निकलना—उसे समुद्घात कहते हैं।

प्रश्न (४४)–जीव द्रव्य किस क्षेत्रमें कभी नहीं जाता ? और उसका कारण क्या ?

उत्तर—वह अलोकाकाश में नहीं जाता, क्योंकि वह लोकका द्रव्य है।

प्रश्न (४५)–एक जीव कमसे कम स्थान ले तो वह लोकाकाश के कितने प्रदेश रोकेगा ?

उत्तर—जीव की जघन्य अवगाहना भी असंख्य प्रदेशों में होती है। जीवकी अवगाहना संख्यात या एकप्रदेशी कभी नहीं होती।

प्रश्न (४६)–आकाशको अवगाहन में कौन निमित्त है ?

उत्तर—वही स्वयंको अवगाहनमें निमित्त है।

प्रश्न (४७)–काल द्रव्य असंख्य है, उसे परिणमनमें कौन निमित्त है ?

उत्तर—वह स्वयं ही अपने को परिणमन में निमित्त है।

प्रश्न (४८)–लोकाकाश की सीमा बतलानेवाले कौनसे द्रव्य हैं ?

उत्तर—धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय।

प्रश्न (४९)–समस्त द्रव्यों को चेतन, अचेतन (जड़)—ऐसे दो विभागों में रखिये।

उत्तर—चेतन मात्र जीव है और शेष पाँच द्रव्य अचेतन (जड़) हैं।

प्रश्न (५०) अरूपी और अचेतन ऐसे कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर—चार हैं–धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल

प्रश्न (५१)–आकाशके एक प्रदेश में कितने परमाणु पृथक् औ कितने स्कंध रह सकते हैं ?

उत्तर—(१) आकाश के एक प्रदेश में सर्व परमाणुओंको स्था देने का सामर्थ्य है।

(२) सर्व परमाणुओं और सूक्ष्म स्कंधों को अवकाश देने में वह एक प्रदेश समर्थ है।

(बृहत् द्रव्य संग्रह गाथा २७ और उसकी टीका)

प्रश्न (५२)–छह द्रव्यों में क्षेतांतररूप क्रियावती* शक्तिवाले कितने और परिणमनरूप भाववती शक्तिवाले कितने द्रव्य हैं ?

उत्तर—जीव और पुद्गल—यह दो द्रव्य क्षेत्रान्तर करने की शक्ति वाले होनेसे वे क्रियावती शक्तिवाले हैं, और छहों द्रव्य निरंतर परिणमनशील होनेसे भावत्रती शक्तिवाले हैं।

प्रश्न (५३)–अनंत पुद्गल परमाणु तथा सूक्ष्म स्कंध लोकाकाश के एक प्रदेश में अवगाहना प्राप्त करें—एक प्रदेश को रोकें, तो एक-दूसरे को बाधा होगी या नहीं ?

उत्तर—नहीं; सर्व पदार्थों को एक ही काल में अवकाश-दान देने का असाधारण गुण आकाश का है, तथा दूसरे सूक्ष्म पदार्थमें भी अवकाश-दान देने का गुण है। एक आकाश प्रदेश में *अमर्यादित अवकाश दान शक्ति है।

प्रश्न (५४)–ऐसे कौन-से द्रव्य हैं कि जो मात्र क्रियावती शक्तिवाले द्रव्यों को ही निमित्त हों ?

उत्तर—जीव और पुद्गल द्रव्य ही क्रियावती शक्तिवाले, गति करने वाले और गतिपूर्वक स्थिर होने वाले द्रव्य हैं; उन्हें अनुक्रम से धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय निमित्त हैं।

---

* जीव और पुद्गल में क्रियावती शक्ति नामका गुण नित्य है। उस शक्ति के कारण वे दोनों द्रव्य उस समय की योग्यतानुसार स्वतः गमन करते हैं या स्थिर रहते हैं। कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक-दूसरे को गमन या स्थिर नहीं करा सकता।

प्रश्न (५५)–द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा अनंतरूप से किन-किन की संख्या अधिक है ?

उत्तर—(१) द्रव्य अपेक्षा से पुद्गल परमाणु द्रव्यों की संख्या सब से बड़ी है। उनकी संख्या अनंत जीवराशि से अनंतानंत गुनी है।

(२) क्षेत्र अपेक्षा से त्रिकालवर्ती समयों की संख्या से अनंतगुनी संख्या आकाश द्रव्य के प्रदेशों की है; इसलिये क्षेत्र अपेक्षा से आकाश द्रव्य सबसे बड़ा है।

(३) काल अपेक्षा से प्रत्येक द्रव्य के स्वकालरूप अनादि-अनंत पर्यायें पुद्गल द्रव्य की संख्या से अनंतगुनी हैं। वे काल अपेक्षा से अनंत हैं, अथवा भूतकाल के अनंत समयों की अपेक्षा भविष्य काल के समयों की संख्या अनंतगुनी अधिक है।

(४) भाव अपेक्षा से जीव द्रव्य के ज्ञान गुण के एक समय के केवलज्ञान पर्याय के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या सब से अनंत-गुनी है; वह भाव अपेक्षा से अनंत है।

प्रश्न (५६)–इस परसे क्या समझना ?

उत्तर—केवलज्ञानमें त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थोंका सम्पूर्ण स्वरूप प्रत्येक समयमें सर्व प्रकारसे युगपत् (एकसाथ) स्पष्ट ज्ञात होता है;—ऐसी केवलज्ञान की अचिन्त्य अपार शक्ति है, और प्रत्येक आत्माका शक्तिरूपसे ऐसा ही स्वभाव है।

प्रश्न (५७)–"अर्थ" किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्यों, गुणों और उनकी पर्यायों को "अर्थ" नाम से कहा है। उनमें गुण-पर्यायोंका आत्मा द्रव्य है (अर्थात् गुणों और पर्यायोंका स्वरूप–सत्व द्रव्य ही है, वे भिन्न वस्तु नहीं हैं) ऐसा जिनेन्द्रदेव का उपदेश है। (प्रवचनसार गाथा ८७)

"ऋ" धातु से "अर्थ" शब्द बना है। "ऋ" अर्थात् पाना, प्राप्त करना, पहुँचना, जाना। "अर्थ" अर्थात् जो पाये, प्राप्त करे, पहुँचे वह; अथवा जिसे पाया जाये, प्राप्त किया जाये—पहुँचा जाये वह।

जो गुणों और पर्यायों को पायें–प्राप्त करें–पहुँचें, अथवा जो गुणों और पर्यायों द्वारा पाये जायें–प्राप्त किये जायें–पहुँचे जायें ऐसे "अर्थ" वे द्रव्य हैं; जो द्रव्यों को आश्रयरूपसे पायें–प्राप्त करें–पहुँचें, अथवा जो आश्रयभूत द्रव्यों द्वारा पाये जायें–प्राप्त किये जायें–पहुँचे जायें ऐसे "अर्थ" वे गुण हैं; जो द्रव्यों को क्रम परिणामसे पायें–प्राप्त करें–पहुँचें अथवा जो द्रव्यों द्वारा क्रम परिणामसे (क्रमशः होनेवाले परिणाम से) पाये जायें–प्राप्त किये जायें–पहुँचे जायें ऐसे "अर्थ वे पर्यायें हैं।

(प्रवचनसार गा० ८७ की टीका)

प्रश्न (५८)–उपरोक्तानुसार "अर्थ की" व्यवस्था पर से संक्षेप में क्या समझें ?

उत्तर—अर्थ (पदार्थ) अर्थात् द्रव्य, गुण और पर्यायें,—इनके अतिरिक्त विश्वमें दूसरा कुछ नहीं है। और इन तीन में, गुणों और पर्यायों का आत्मा (उनका सर्वस्व) द्रव्य ही है। ऐसा होने से किसी द्रव्यके गुण और पर्यायें अन्य द्रव्यके गुणों और पर्यायोंरूप अंशतः भी नहीं होते; सर्व द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायोंमें रहते हैं;—ऐसी पदार्थों की स्थिति मोहक्षयके निमित्त-भूत पवित्र जिनशास्त्रोंमें कही है।

(प्रवचनसार गा० ८७ का भावार्थ)

प्रश्न (५९)–लोकाकाश में असंख्यात ही प्रदेश हैं, तो उसमें अनंत प्रदेशी पुद्गल द्रव्य तथा अन्य द्रव्य भी कैसे रह सकेंगे ?

उत्तर—"पुद्गल द्रव्यमें दो प्रकारका परिणमन होता है—एक सूक्ष्म, दूसरा स्थूल। जब उसका सूक्ष्म परिणमन होता है तब लोकाकाशके एक प्रदेश में भी अनंतप्रदेशी पुद्गल स्कंध रह सकता है। पुनश्च, समस्त द्रव्योंमें एक दूसरे को अवगाहन देने का सामर्थ्य है, इसलिये अल्प क्षेत्रमें ही सर्व द्रव्योंके रहने में कोई बाधा नहीं होती। आकाशमें समस्त द्रव्योंको एक ही साथ अवकाश-दान देने का सामर्थ्य है; इसलिये एक प्रदेशमें अनंतानंत परमाणु रह सकते हैं; जिसप्रकार—किसी कमरे में एक दीपकका प्रकाश रह सकता है और उसी कमरे में उतने ही विस्तार में पचास दीपकों का प्रकाश रह सकता है, तदनुसार।

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी), अध्याय ५, सूत्र १० की टीका)

प्रश्न (६०)–द्रव्यका लक्षण क्या है ?

उत्तर—(१) सद्द्रव्यलक्षणम्। (मोक्षशास्त्र अध्याय ५, सूत्र २९)

अर्थ—द्रव्यका लक्षण सत् (अस्तित्व) है।

विशेषार्थः—

जिसके "है" पना (अस्तित्व) हो वह द्रव्य है। "अस्तित्व" गुण द्वारा "द्रव्य" को पहिचाना जा सकता है; इसलिये इस सूत्रमें 'सत्' को द्रव्यका लक्षण कहा है; जिसके–जिसके अस्तित्व हो वह–वह द्रव्य है–ऐसा यह सूत्र प्रतिपादन करता है।

सामान्य गुणों में 'सत्' (अस्तित्व) मुख्य है; क्योंकि उसके द्वारा वस्तु का (–द्रव्य का) अस्तित्व सिद्ध होता है। यदि द्रव्य हो तभी दूसरे गुण हो सकते हैं; इसलिये 'सत्' को यहाँ द्रव्य का लक्षण कहा है।

द्रव्य सत् है, इसलिये वह अपने से है–ऐसा 'सत्' लक्षण कहते

से सिद्ध हुआ। उसका अर्थ यह हुआ कि वह स्व-रूप से है और पर रूप से नहीं है। इसप्रकार 'अनेकान्त' सिद्धान्त से यह सूत्र बतलाता है कि एक द्रव्य स्वयं अपना सब कुछ कर सकता है किन्तु दूसरे द्रव्य का कभी कुछ नहीं कर सकता।

प्रत्येक द्रव्य "सत्" लक्षणवाला है, इसलिये वह स्वतः सिद्ध है। वह किसी की अपेक्षा नहीं रखता—वह स्वतंत्र है।

(देखिए मोक्षशास्त्र-गुजराती आवृत्ति-अ-५ सू-२६ की टीका)

(२) एक द्रव्य में भूत, वर्तमान और भविष्य संबंधी जितनी गुणों के परिणमनरूप अर्थपर्यायें तथा द्रव्य के आकारादि परिणमनरूप व्यंजन पर्यायें हैं उतने मात्र को द्रव्य जानना; क्योंकि द्रव्य उन से पृथक् नहीं है। अपनी त्रैकालिक सर्व पर्यायों का समूह वह द्रव्य है।

(गोम्मटसार, जीवकांड गाथा ५८१)

प्रश्न (६१)—सत् का लक्षण क्या ?

उत्तर—(१) उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्। (मोक्षशास्त्र अध्या.५, सूत्र३०)

अर्थ—जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित हो वह सत् है।

उत्पाद—द्रव्य में नवीन पर्याय की उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं; जैसे कि—मिट्टी से घड़े का उत्पाद।

व्यय—पूर्व पर्याय के नाश को व्यय कहते हैं; जैसे—घट पर्यायका उत्पाद होने पर मिट्टी की पिंड पर्याय का व्यय।

ध्रौव्य-दोनों पर्यायों में (उत्पाद और व्यय में) द्रव्यका सदृशतारूप स्थायी रहना उसे ध्रौव्य कहते हैं; जैसे कि—पिण्ड और घट पर्याय में मिट्टी का नित्य स्थायी रहना।

(२)—द्रव्य का लक्षण सत् है; इसलिये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य—इन

तीनों से युक्त सत् ही द्रव्य का लक्षण है। इन तीनों से युगपत् (एक ही समय में) युक्त मानने से ही सत् सिद्ध होता है। वस्तु स्वतः सिद्ध है; उसी प्रकार वे स्वतः परिणमनशील भी हैं; इस लिये यहां वह सत् नियम से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप है।

(देखिए, पंचाध्यायी भाग १, गाथा ८६—८९)

(३)—"प्रत्येक पदार्थ में पूर्व पर्याय का नाश होकर ही नवीन पर्याय का उत्पाद होता है; किन्तु ऐसा होने पर भी वह अपनी (प्रवाह-रूप) धारा को नहीं छोड़ता। इससे ज्ञात होता है कि पदार्थ उत्पादादि त्रयात्मक है; किन्तु यहाँ उस उत्पाद और व्यय को भिन्न कालवर्ती न लेकर एक कालवर्ती (एक समयवर्ती) ही लेना चाहिये, क्योंकि पूर्व पर्याय के व्यय का जो समय है वही नवीन पर्याय के उत्पाद का समय है। दूध का विनाश और दही का उत्पाद भिन्नकालवर्ती नहीं है। इसप्रकार उत्पाद और व्यय एक कालवर्ती सिद्ध होने से सत् युगपत् उत्पादादि त्रयात्मक सिद्ध होता है.....

[पं० फूलचन्दजी सम्पादित पंचाध्यायी ; अ० १ पृष्ठ २१, गाथा ८५ से ९६ का विशेषार्थ]

—(४) प्रत्येक द्रव्य सदैव स्वभाव में रहता है इसलिये "सत्" है। वह स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप परिणाम है। जिस प्रकार द्रव्य के विस्तार का छोटे से छोटा अंश वह प्रदेश है, उसीप्रकार द्रव्य के प्रवाह का छोटे से छोटा अंश वह परिणाम है। प्रत्येक परिणाम स्व-काल में अपने रूप से उत्पन्न होता है, पूर्व रूप से विनष्ट होता है और सर्व परिणामों में एकप्रवाहपना होने से प्रत्येक परिणाम उत्पाद-व्यय रहित एकरूप ध्रुव रहता

है। और, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य में समय भेद नहीं है, तीनों ही एक समय में हैं। —ऐसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक परिणामों की परम्परा में द्रव्य स्वभाव से ही सदैव रहता है, इसलिये द्रव्य स्वयं भी मोतियों के हार की भाँति उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है।"

—[श्री प्रवचनसार गा० ९९ का भावार्थ]

—(५) "बीज, अंकुर और वृक्षत्व—यह वृक्ष के अंश हैं। बीज का नाश, अंकुर का उत्पाद और वृक्षत्व का ध्रौव्य (ध्रुवता) तीनों एक ही साथ हैं। इसप्रकार नाश बीज के आश्रित है, उत्पाद अंकुर के आश्रित है और ध्रौव्य वृक्षत्व के आश्रित है। नाश-उत्पाद-ध्रौव्य-बीज-अंकुर-वृक्षत्व से भिन्न पदार्थरूप नहीं है। और बीज-अंकुर-वृक्षत्व भी वृक्ष से भिन्न पदार्थरूप नहीं है; इसलिये वे सब एक वृक्ष ही हैं। इसीप्रकार नष्ट होने वाला भाव, उत्पन्न होने वाला भाव और स्थित रहने वाला ध्रौव्यभाव वे सब द्रव्य के अंश हैं। नष्ट होने वाले भाव का नाश उत्पन्न होने वाले भाव का उत्पाद और स्थित रहने वाले स्थायी भाव की ध्रुवता एक ही साथ हैं। इसप्रकार नाश नष्ट होने वाले भाव के आश्रित है, उत्पाद उत्पन्न होने वाले भाव के आश्रित है और ध्रौव्य स्थित रहने वाले भावके आश्रित है। नाश-उत्पाद-ध्रौव्य वे भावों से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; और वे भाव भी द्रव्य से भिन्न पदार्थरूप नहीं हैं; इसलिये यह सब एक द्रव्य ही है।"

[श्री प्रवचनसार गाथा १०१ का भावार्थ]

—(६) " इस सूत्र में सत् का अनेकान्तपना बतलाया है। यद्यपि त्रिकाल अपेक्षा से सत् " ध्रुव " है तथापि प्रतिसमय

नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पुरानी पर्याय व्यय को प्राप्त होती है, अर्थात् द्रव्य में समा जाती है, वर्तमानकाल की अपेक्षा अभावरूप होती है। इसप्रकार कथंचित् नित्यपना और कथंचित् अनित्यपना–वह द्रव्य का अनेकान्तपना है।"

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी) अ. ५, सू. ३० की टीका)

(७)–"इस सूत्र में पर्याय का भी अनेकान्तपना बतलाया है उत्पाद वह अस्तिरूप पर्याय है और व्यय वह नास्तिरूप पर्याय है। अपनी पर्याय अपने से होती है और पर से नहीं होती–ऐसा "उत्पाद" से बतलाया है। अपनी पर्यायकी नास्ति–(अभाव) भी अपने से ही होती है, पर से नहीं होती। "प्रत्येक द्रव्य का उत्पाद और व्यय स्वतंत्र उस-उस द्रव्य से है।"–ऐसा बतलाकर द्रव्य, गुण तथा पर्याय की स्वतंत्रता प्रगट की–पर का असहायकपना बतलाया।"

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी) अ. ५, सूत्र ३० की टीका

–प्रकाशक जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़)

(८)– 'धर्म (शुद्धता) आत्मा में द्रव्यरूप से त्रिकाल भरपूर है; अनादि से जीवको पर्यायरूप में धर्म प्रगट नहीं हुआ, किन्तु जब जीव पर्याय में धर्म व्यक्त करे तब वह व्यक्त होता है। इसप्रकार "उत्पाद" शब्द का उपयोग करके बतलाया और उसी समय विकार का व्यय होता है–ऐसा "व्यय" शब्द का भी उपयोग कर दिखाया। वह अविकारी भाव प्रगट होने का और विकारी भाव जानेका लाभ–त्रिकाल स्थायी रहनेवाले ऐसे ध्रुव द्रव्य को प्राप्त होता है–इसप्रकार "ध्रौव्य" शब्द को अन्तिम रखा।"

(मोक्षशास्त्र (हिन्दी) अ. ५, सू. ३० की टीका)

प्रश्न (९२)–सत्, उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप त्रयात्मक है।–इस कथन में आध्यात्मिक रहस्य क्या भरा है ?

उत्तर—"प्रत्येक द्रव्य एक समय में अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप त्रिस्वभावका स्पर्श करता है, उसी समय निमित्त होने पर भी द्रव्य उनका स्पर्श नहीं करते। सम्यग्दर्शन हुआ वहाँ आत्मा उस सम्यग्दर्शनके उत्पादको, मिथ्यात्वके व्यय को और श्रद्धारूप अपनी ध्रुवताको स्पर्श करता है, किन्तु सम्यक्त्वके निमित्तभूत ऐसे देव, गुरु या शास्त्र को स्पर्श नहीं करता; वे तो भिन्न स्वभावी पदार्थ हैं। सम्यग्दर्शनकी उत्पत्ति, मिथ्यात्वका व्यय तथा श्रद्धापनेकी अखण्डतारूप ध्रुवता—इन तीनों का आत्मामें ही समावेश होता है; किन्तु इनके अतिरिक्त जो बाह्य निमित्त हैं उनका समावेश आत्मामें नहीं होता। प्रतिसमय उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप द्रव्यका अपना स्वभाव है और उस स्वभावका ही प्रत्येक द्रव्य स्पर्श करता है, यानी अपने स्वभावरूप ही वर्तता है; किन्तु परद्रव्यके कारण किसी के उत्पाद-व्यय-ध्रुव नहीं हैं। परद्रव्य भी उसके अपने ही उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभाव में अनादि-अनंत वर्तता है और यह आत्मा भी अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुव स्वभावमें ही अनादि–अनंत वर्तता है;—ऐसा समझनेवाले ज्ञानी को अपने आत्माके उत्पाद-व्यय-ध्रुवके अतिरिक्त बाह्यमें कोई भी कार्य किंचित्मात्र अपना भासित नहीं होता, इसलिये उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप अपना जो आत्मा है उसके आश्रयसे निर्मलताका ही उत्पाद होता जाता है; मलिनताका व्यय होता जाता है और ध्रुवता का अवलम्बन बना ही रहता है—इसका नाम धर्म है।

अजीव द्रव्य भी अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप त्रिस्वभावका स्पर्श करता है, परका स्पर्श नहीं करता जैसे कि—मिट्टी के पिण्डमें से घड़ा हुआ; वहाँ पिण्ड अवस्था के व्ययको, घट अवस्थाके उत्पाद को और मिट्टीपने की ध्रुवताको वह मिट्टी स्पर्श करती है; किन्तु वह कुम्हार को, चाक को, डोरी को या अन्य किसी परद्रव्यको स्पर्श नहीं करती; और कुम्हार भी हाथ के हलन-चलनरूप अपनी अवस्थाका जो उत्पाद हुआ उस उत्पाद को स्पर्श करता है, किन्तु अपने से बाह्य ऐसे घड़े को वह स्पर्श नहीं करता।

जगत में छहों द्रव्य एक ही क्षेत्रमें विद्यमान होने पर भी कोई द्रव्य दूसरे द्रव्यके स्वभावको स्पर्श नहीं करता; अपने-अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप स्वभावमें ही प्रत्येक द्रव्य वर्तता है इसलिये वह अपने स्वभावको ही स्पर्श करता है। देखो, यह सर्वज्ञदेव कथित वीतरागी भेदज्ञान ! निमित्त–उपादानका स्पष्टीकरण भी इसमें आजाता है। उपादान और निमित्त यह दोनों पदार्थ एक साथ प्रवर्तमान होने पर भी उपादान रूप पदार्थ अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप स्वभावका ही स्पर्श करता है—निमित्त का किंचित् भी स्पर्श नहीं करता। और निमित्तभूत पदार्थ भी उसके अपने उत्पाद-व्यय-ध्रुवतारूप स्वभावका ही स्पर्श करता है, उपादान का वह किंचित् स्पर्श नहीं करता। उपादान और निमित्त दोनों पृथक्-पृथक् अपने-अपने स्वभावमें ही वर्तते हैं, परिणमन करते हैं।

अहो ! पदार्थों का यह एक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव भली भांति पहिचान ले तो भेदज्ञान होकर स्व-द्रव्यके ही आश्रय से

निर्मल पर्याय का उत्पाद और मलिनता का व्यय हो;—उसका नाम धर्म है और वही सर्वज्ञ भगवान के सर्व उपदेश का तात्पर्य है।" —[वी० सं० २४८१ आसोज मास का आत्मधर्म अंक पत्र ३०१-२ से उद्धृत]

प्रश्न (६३)-दूसरे प्रकारसे द्रव्यका क्या लक्षण है ?

उत्तर—१-गुणपर्ययवत् द्रव्यम् [मोक्षशास्त्र, अ. ५, सूत्र ३८]

अर्थ—द्रव्य गुण पर्यायवाला है।

२-गुणपर्ययसमुदायो द्रव्यम्। [पंचाध्यायी भा. १, गाथा ७२]

अर्थ—गुणों तथा पर्यायों का समुदाय वह द्रव्य है।

३-गुणसमुदायो द्रव्यम्। [पंचाध्यायी भाग १, गाथा ७३]

अर्थ—गुणों का समुदाय वह द्रव्य है।

४-समगुणपर्यायो द्रव्यम्। [पंचाध्यायी भाग १, गाथा ७३]

अर्थ—समगुण—पर्यायोंको (युगपत् सम्पूर्ण गुण पर्यायों को ही) द्रव्य कहते हैं।

स्पष्टार्थ—देश*, देशांश, गुण और गुणांशरूप स्वचतुष्टय को ही एक साथ एक शब्द द्वारा द्रव्य कहते हैं। भेद-विवक्षा से द्रव्य का स्वरूप समझाने के लिये स्वचतुष्टयका निरूपण किया है; उसी को अभेद-विवक्षा से एक शब्द में "द्रव्य" कहा जाता है। यही "समगुणपर्याय" शब्दका स्पष्टीकरण है।

[पंचाध्यायी भाग. १, गाथा ७४]

५-"द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्।"

अर्थ—द्रव्यत्व के सम्बन्धसे द्रव्य है। यह भी प्रमाण है। किस प्रकार ? गुण-पर्यायों को द्रवित हुए बिना द्रव्य

---

* देश-द्रव्य; देशांश-क्षेत्र; गुण-भाव; गुणांश—पर्याय-काल।

नहीं होता; इसलिये द्रवित होना द्रव्यत्वगुण से है; (द्रव्य स्वयं) द्रवित होकर गुण-पर्याय में व्याप्त होकर उसे प्रगट करता है, इसलिये गुण-पर्याय का प्रगट करना द्रव्यत्वगुणसे है। इसलिये द्रव्यत्व (गुण) की विवक्षा से "द्रव्यत्वयोगाद् द्रव्यम्"—द्रव्यत्व के संबंध से द्रव्य है......द्रव्य, गुण-पर्यायोंको द्रवित करता है; गुण-पर्यायें द्रव्यको द्रवित रखते हैं, इसलिये वे "द्रव्य" नाम प्राप्त करते हैं.....अपने स्वभावरूपसे द्रव्य स्वतः परिणमित होता है इसलिये (वह) स्वतः सिद्ध कहलाता है।

(—इसप्रकार "सत्ता", "गुण-पर्यायवाला", "गुणों का समुदाय", "द्रव्यत्व का सम्बन्ध" आदि लक्षण प्रमाण हैं। उनमें से किसी एक को जब मुख्य करके कहा जाता है तब शेष लक्षण भी उसमें गर्भितरूपसे आ ही जाते हैं—ऐसा जानना ।)

[चिद्विलास पृष्ठ ३ से]

विशेषार्थ—

(१) "यहाँ मुख्यतासे द्रव्यके लक्षण का विचार किया गया है। ऐसा करते हुए ग्रंथकारने विविध आचार्योंके अभिप्रायानुसार तीन लक्षण कहे हैं। प्रथम लक्षण में द्रव्यको गुण-पर्यायवाला बतलाया है। बात यह है कि प्रत्येक द्रव्य अनंत गुणोंका और क्रमरूप होनेवाली उनकी पर्यायोंका पिण्डमात्र है। इसका अर्थ यह है कि—जिससे धारामें (प्रवाहमें) एकरूपता बनी रहती है वह गुण है, और जिससे उसमें भेद प्रतीत होते हैं वह पर्याय

है। जीवमें ज्ञानकी धाराका विच्छेद कभी नहीं होता, इसलिये ज्ञान वह गुण है; किन्तु कभी-कभी वह मतिज्ञानरूप होता है और कभी अन्यरूप होता है, इसलिये मतिज्ञानादि उसकी पर्यायें हैं। द्रव्य सदैव गुण-पर्यायोंरूप रहता है इसलिये उसे गुण-पर्यायोंवाला कहा है।

—इसीप्रकार यद्यपि द्रव्य, गुण-पर्यायवाला अथवा गुण और पर्यायों के समुदायमात्र प्राप्त होता है, तथापि कुछ आचार्य गुणों के समुदाय को द्रव्य कहते हैं। इसलक्षण में विविध अवस्थाओं की अविवक्षा करके (गौण करके) यह कथन किया गया है; इसलिये उसे पूर्वोक्त लक्षण का विरोधी न मानकर उसका पूरक ही मानना चाहिये।

तथापि गुण-पर्यायों वाला अथवा गुणवाला द्रव्य है—ऐसा कथन करने से गुण और पर्याय भिन्न प्रतीत होते हैं और द्रव्य भिन्न प्रतीत होता है; इसलिये इस दोषके निवारणार्थ कुछ आचार्य द्रव्य का लक्षण समगुणपर्याय कहते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि देश, देशांश तथा गुण और गुणांश—यह पृथक्—पृथक् न होकर परस्पर (एक-दूसरे से) अभिन्न हैं। इनमें से किसी को भी पृथक् करना शक्य नहीं है। जिसप्रकार—वृक्ष तना, डाल आदि रूप होता है, उसी प्रकार देश, देशांश, गुण और गुणांशमय द्रव्य है........ पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से गुण, गुणांश आदि को पृथक्—पृथक् कहा जाता है, किन्तु द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षासे एक अखण्ड द्रव्य ही है.........."

(पंचाध्यायी, अध्याय १, गाथा ७२ से ७४ तक के विशेषार्थ में से। पं० फूलचन्दजी सम्पादित हिन्दी आवृत्ति से)

(२) "मोक्षशास्त्र" अध्याय ५, सूत्र २६-३० में कहे गये लक्षणसे यह लक्षण (गुण-पर्ययवत् द्रव्यम्) भिन्न नहीं है; शब्दभेद है किन्तु भाव भेद नहीं है। पर्याय से उत्पाद-व्ययकी और गुण से ध्रौव्य की प्रतीति हो जाती है।

गुण को अन्वय, सहवर्ती पर्याय अथवा अक्रमवर्ती पर्याय भी कहते हैं; तथा पर्याय को व्यतिरेकी अथवा क्रमवर्ती कहते हैं। द्रव्यका स्वभाव गुण-पर्याय रूप है,–ऐसा सूत्रमें कहकर द्रव्य का अनेकान्तपना सिद्ध किया है।

द्रव्य, गुण और पर्याय वस्तुरूप से अभेद-अभिन्न हैं। नाम, संख्या, लक्षण और प्रयोजन की अपेक्षा से द्रव्य, गुण और पर्याय में भेद है, किन्तु प्रदेश से अभेद है–इसप्रकार वस्तु का भेदाभेद स्वरूप समझना चाहिये।"

[मोक्षशास्त्र, अध्याय ५, सूत्र ३८ की टीका]



प्रकरण दूसरा

(२) गुण अधिकार

सामान्य गुण

प्रश्न (६४)–समस्त विश्व तीन पदार्थोंमें समा जाता है; तो वे तीन पदार्थ कौन-से हैं ?

उत्तर—छह द्रव्य, उनके गुण और उनकी पर्यायें* ।

प्रश्न (६५)–छहों द्रव्यों के द्रव्य–गुण–पर्याय को जानने का फल क्या ?

उत्तर—स्व-पर का भेदज्ञान और पर पदार्थों की कर्तृत्वबुद्धि का अभाव ।

प्रश्न (६६)–गुण किन्हें कहते हैं ?

उत्तर—जो द्रव्य के सम्पूर्ण भागमें जौर उसकी सर्व अवस्थाओंमें रहे उसे गुण कहते हैं ।

प्रश्न (६७)–"गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं"—इन शब्दों परसे द्रव्य और गुणका संख्या भेद कहिये ।

उत्तर—द्रव्य एक, गुण अनेक ।

प्रश्न (६८)–जिसप्रकार थैली में रुपये हैं, उसीप्रकार द्रव्यमें गुण होंगे ?

---

* गुणों के विशेष कार्यको (परिणमनको) पर्याय कहते हैं ।

उत्तर—नहीं।

प्रश्न (६९)–तो फिर द्रव्यमें गुण किसप्रकार रहते हैं ?

उत्तर—जिसप्रकार गुड़में मिठास, रंग आदि एकमेकरूपसे रहते हैं, उसीप्रकार द्रव्यमें गुण एकमेकरूपसे रहते हैं।

प्रश्न (७०)–गुण की व्याख्यामें से क्षेत्रवाचक और कालवाचक शब्द बतलाइये।

उत्तर—"सम्पूर्ण भागमें"—यह क्षेत्र बतलाता है; "सर्व अवस्थाओं में"—यह काल बतलाता है।

प्रश्न (७१)–"सम्पूर्ण भाग में"—इस कथनसे क्या समझें ?

उत्तर—जितना द्रव्यका क्षेत्र उतना ही गुणोंका क्षेत्र होता है; किसी का क्षेत्र कभी छोटा–बड़ा नहीं होता।

प्रश्न (७२)–"सर्व अवस्थाओं" का क्या तात्पर्य ?

उत्तर—द्रव्य की तीनों कालकी अनादि-अनंत अवस्थाएँ।

प्रश्न (७३)–द्रव्य पहला या गुण ?

उत्तर—दोनों अनादि-अनंत होने से पहले या पश्चात् कोई नहीं है।

प्रश्न (७४)–संख्या अपेक्षासे द्रव्य, गुण और पर्याय की तुलना करो।

उत्तर—द्रव्य एक और उसके गुण तथा पर्यायें अनेक।

प्रश्न (७५)–गुण की व्याख्यामें से "द्रव्य के सम्पूर्ण भाग में"—यह शब्द निकाल दें तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—क्षेत्र अपेक्षा से गुण द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें व्यापक हैं। व्या ख्यामें से "सम्पूर्ण भागमें"—यह शब्द निकाल दें तो निम्नोक्त दोष आयेंगे:—

(१) गुण द्रव्यके अधूरे भागमें रहने से शेष भाग का द्रव्य गुणरहित हो जायेगा और ऐसा होने से द्रव्यका भी नाश होगा

(२) जिसप्रकार—जितनी बड़ी मिसरी की डली है उसके उतने ही भागमें अपने मिठास (-रसादि) आदि गुण हैं; उसी-प्रकार—जितने भागमें द्रव्य, उसके उतने ही भागमें गुण—ऐसी जो क्षेत्र अपेक्षा है वह मर्यादा नहीं रहेगी।

प्रश्न (७६)–गुणकी व्याख्यामें से काल अपेक्षा बतलानेवाले—"सर्व अवस्थाओं में"—यह शब्द निकाल दें तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—काल अपेक्षा से द्रव्यमें अनादि-अनंत सर्व अवस्थाओं में रहे वह गुण—ऐसी व्याख्या नहीं हो सकेगी, और उससे निम्नोक्त दोष आयेंगे—

(१) गुण, द्रव्यके अमुककालमें रहेगा इसलिये शेष कालमें द्रव्य गुणरहित होने से द्रव्यका ही नाश हो जायेगा।

(२) किसी काल में ही गुणका अस्तित्व (सत्ता) मानने से द्रव्यकी सर्व अवस्थाओं में व्यापक रहने रूप गुणकी मर्यादा नहीं रहेगी।

प्रश्न (७७)–गुणों के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो–(१) सामान्य और (२) विशेष।

प्रश्न (७८)–सामान्य गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सर्व द्रव्यों में हो उसे सामान्यगुण कहते हैं।

प्रश्न (७९)–विशेष गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो सर्व द्रव्यों में न हो, किन्तु अपने-अपने द्रव्य में हो उसे विशेष गुण कहते हैं।

प्रश्न (८०)–सामान्य गुणोंका क्षेत्र बड़ा या विशेष गुणों का ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्यमें सामान्य और विशेष गुणों का क्षेत्र एक-सा ही होता है, क्योंकि गुणका लक्षण बतलाया उसमें कहा था कि

गुण द्रव्यके सम्पूर्ण भागमें रहता है ।

प्रश्न (८१)–सामान्य और विशेष गुणों में प्रथम कौन और पश्चात् कौन ?

उत्तर—दोनों एकसाथ अनादिकालीन हैं; प्रथम या पश्चात् कोई नहीं हैं ।

प्रश्न (८२)–एक द्रव्य में रहने वाले प्रत्येक गुणोंको भिन्न भिन्न किस आधार से जानोगे ?

उत्तर—प्रत्येक गुणके भिन्न-भिन्न लक्षणों से ।

प्रश्न (८३)–किस अपेक्षा से द्रव्य से गुण पृथक् नहीं होते ?

उत्तर—प्रदेश अपेक्षा से पृथक् नहीं होते; क्योंकि द्रव्य और गुणों का क्षेत्र एक ही है ।

प्रश्न (८४)–प्रत्येक द्रव्य के गुणों के प्रदेश भिन्न-भिन्न मानने में क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—ऐसा माना जाये तो द्रव्य के आश्रय से गुण न रहे, और जितने गुण हैं उतने अलग-अलग द्रव्य हो जायें; तथा इस द्रव्य का यह गुण हैं–ऐसी मर्यादा न रहे ।

प्रश्न (८५)–गुणकी व्याख्या में द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव किसप्रकार आते हैं ?

उ०–(१) "द्रव्य" द्रव्य को बतलाता है ।

(२) "सम्पूर्ण भाग में"–यह क्षेत्र बतलाता है ।

(३) "सर्व अवस्थाओं में"–यह काल बतलाता है ।

(४) "गुण"–यह भाव बतलाता है ।

प्र०–(८६) द्रव्य और उसके गुणों में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की तुलना करो ।

उ०–द्रव्य और गुण के द्रव्य–क्षेत्र और काल एक–से हैं, किन्तु उनके भावों में अन्तर है ।

प्र० (८७)–द्रव्य और गुणों में संज्ञा, संख्या और लक्षणकी अपेक्षासे भेद बतलाओ ।

उ०–(१) संज्ञा–दोनों के नाम में भेद है ।

(२) संख्या–द्रव्य एक और गुण अनेक होते हैं ।

(३) लक्षण–"गुणों का समूह वह द्रव्य"–यह द्रव्य का लक्षण है, और "जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग में तथा उशकी सर्व अवस्थाओं में रहे वह गुण"–यह गुण का लक्षण है । इसप्रकार लक्षण से भी द्रव्य और गुण में भेद है ।

प्र० (८८)–प्रत्येक गुण के कार्यक्षेत्र की मर्यादा क्या है ?

उ०–प्रत्येक गुण अपने स्व द्रव्य के क्षेत्र में निरन्तर अपना ही कार्य करता है; कभी परका या अन्य गुणका कार्य नहीं करता–ऐसी प्रत्येक गुण के कार्य क्षेत्र की मर्यादा है ।

प्र० (८९)–ऐसा कौन-सा द्रव्य है कि जिस में सामान्य गुण नहीं होते ?

उ०–ऐसा कोई द्रव्य नहीं होता; क्यों कि प्रत्येक द्रव्य में सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के गुण होते हैं ।

प्र० (९०)–द्रव्य में सामान्य गुण न हो तो वया दोष ? और विशेष गुण न हो तो क्या ?

(१) सामान्य गुण न हो तो द्रव्यत्व ही न रहे ।

(२) विशेष गुण न हो तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे पृथक् मालूम न हो, अर्थात् किसी द्रव्य को पर द्रव्य से भिन्न नहीं जाना जा सकता ।

प्रश्न (६१)–सामान्य गुण कितने होते हैं ?

उत्तर—सामान्य गुण अनेक हैं, किन्तु मुख्यरूपसे जानने योग्य छह हैं—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व और प्रदेशत्व ।

(१) अस्तित्व गुण

प्रश्न (६२)–अस्तित्व गुणका "गुणकी व्याख्या" में प्रयोग कीजिये।

उत्तर—अस्तित्व गुण छहों द्रव्यों के अपने-अपने पूर्ण भाग में और उनकी सर्व अवस्थाओंमें रहता है ।

प्रश्न (६३)–अस्तित्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्ति के कारण द्रव्यका कभी अभाव न हो उसे अस्तित्वगुण कहते हैं; क्योंकि द्रव्य अनादि–अनंत है ।

प्रश्न (६४)–श्री आदिनाथ भगवान जिस काल इस लोकमें विद्यमान थे उसी कालमें हम भी थे—यह किस आधार पर मानोगे ?

उत्तर—हम में अस्तित्व गुण होने से सिद्ध होता है कि उस काल लोक के किसी भी क्षेत्रमें हम थे ।

प्रश्न (६५)–क्या यह सच है कि ईश्वर ने जगतकी रचना की है ?

उत्तर—नहीं; अस्तित्व गुणके कारण विश्व अर्थात् अनंत जीव, अजीवादि छहों द्रव्य स्वयंसिद्ध अनादि-अनंत हैं; इसलिये किसी ने उसे बनाया नहीं है ।

प्रश्न (६६)–कोई जगत की रक्षा करता है ?

उत्तर—(१) नहीं; प्रत्येक वस्तु अपनी अनंतशक्ति से स्वयं रक्षित है

(२) प्रत्येक द्रव्य में अस्तित्व गुण होने से अपनी रक्षा (अस्तित्व) के लिये उसे किसी दूसरे की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

प्रश्न (६७)—कोई जगत का संहार (-विनाश) करता है ?

उत्तर—नहीं; अस्तित्व गुणके कारण किसी द्रव्यका कभी नाश नहीं होता; किन्तु द्रव्यत्व गुणके कारण प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही सदैव अपनी नई–नई पर्यायें (अवस्थायें) उत्पन्न करता है और स्वयं ही अपनी पूर्व अवस्थाओंका नाश करता है अर्थात् निरंतर परिवर्तित होता है और द्रव्यरूपसे नित्यस्थायी रहता है।

प्रश्न (६८) इस परसे सिद्धान्त क्या समझना ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य त्रिकाल भिन्न-भिन्न,–स्वतंत्र है और प्रत्येक द्रव्यमें अपने ही कारण पर्याय अपेक्षासे नई अवस्थाकी उत्पत्ति, पूर्व पर्यायका नाश और द्रव्य अपेक्षासे नित्य स्थिर रहना—ऐसी स्थिति त्रिकाल होरही है।

प्रश्न (६६)—जीवके अस्तित्व गुण को जानने से क्या लाभ ?

उत्तर—मैं स्वतंत्र अनादि-अनंत अपने ही कारण स्थित रहनेवाला हूँ, किसी परसे या संयोगसे मेरी उत्पत्ति नहीं हुई है और न मेरा कभी नाश होता है। —ऐसा अस्तित्व गुण को जानने से लाभ होता है और मरण का भय दूर हो जाता है।

(२) वस्तुत्व गुण।

प्रश्न (१००)—वस्तुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्ति के कारण द्रव्य में अर्थ क्रिया (प्रयोजनभूत क्रिया) हो; जैसे कि—आत्मा की अर्थ क्रिया—जानना आदि है।

प्रश्न (१०१)—सिद्ध भगवान कृतकृत्य होगये हैं; तो अब उनका कार्य करना रुक गया है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि उनमें वस्तुत्व गुण के कारण प्रत्येक गुणका प्रयोजनभूत कार्य (निर्मल स्वभावरूप परिणमन) प्रति समय हो रहा है।

प्रश्न (१०२)–द्रव्य का "वस्तु" नाम क्यों है ?

उ०–(१) वस्तुत्व गुण की मुख्यता से द्रव्यको वस्तु कहते हैं।

(२) जिसमें गुण, पर्याय बसते हैं उसे वस्तु कहते हैं।

—(गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा ६७२ टीका)

(३) जिसमें सामान्य–विशेष स्वभाव हो उसे वस्तु कहते हैं।

(४) प्रत्येक द्रव्य अपना प्रयोजनभूत कार्य करता है, इसलिये उसे वस्तु कहते है।

"वस्तु" नाम यह भी सूचित करता है कि प्रत्येक द्रव्य के गुण, पर्याय अपने २ द्रव्य में ही बसते हैं; इसलिये जीव के गुण-पर्याय शरीर में अथवा पर द्रव्य में वास नहीं करते। प्रत्येक जीव के गुण पर्याय उस २ जीव में बसते हैं; इसलिये जीव को सचमुच किसी अन्य द्रव्य का अवलम्बन लेना पड़े—यह सम्भव ही नहीं है। प्रत्येक द्रव्य अपने में ही परिपूर्ण है।

(३) द्रव्यत्व गुण।

प्रश्न (१०३)–द्रव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्य की अवस्था निरन्तर बदलती रहे उसे द्रव्यत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१०४)–द्रव्य का नाम "द्रव्य" क्यों है ?

उत्तर—द्रव्यत्व गुणकी मुख्यता से।

प्रश्न (१०५)–काल से सब बदलता है—परिवर्तित होता रहता है, इसलिये सब कालके आधीन है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि जगत के छहों द्रव्य निरंतर अपनी द्रव्यत्व-शक्ति से ही परिवर्तन करते हैं; उसमें काल द्रव्य तो निमित्त-मात्र है। वस्तुकी स्थिति किसी की अपेक्षा नहीं रखती; इस-

लिये कालके आधीन कहना व्यवहार कथन है।

प्रश्न (१०६)—द्रव्य के प्रत्येक गुणमें नई-नई पर्यायें होती हैं ? होती हैं तो उसका कारण क्या ?

उत्तर—होती हैं; क्योंकि सर्व गुण निरंतर परिणमन स्वभावी होते हैं और उनमें अपने-अपने द्रव्यत्व गुण निमित्त है।

प्रश्न (१०७)—प्रत्येक द्रव्य में द्रव्यत्वादि गुण त्रिकाल रहते हैं ? और रहते हैं तो उसका कारण क्या ?

उत्तर—(१) हाँ, द्रव्यमें द्रव्यत्वादि गुण अपने-अपने कारण स्वयं त्रिकाल रहते हैं; उसमें अस्तित्व नामका सामान्य गुण निमित्त है।

(२) जिसप्रकार द्रव्यका कभी नाश न होनेसे वह अनादि-अनंत है, उसी प्रकार द्रव्यके समस्त गुण भी अस्तित्व गुणके कारण कभी नाश को प्राप्त नहीं होते, इसलिये वे भी अनादि-अनंत हैं।

प्रश्न (१०८)—द्रव्यत्व गुणसे क्या समझना चाहिये ?

उत्तर—(१) सर्व द्रव्यों की अवस्थाओं का परिवर्तन निरन्तर उनके अपने कारण अपने में ही होता रहता है, दूसरा कोई उनकी अवस्था नहीं बदलता।

(२) जीवकी कोई पर्याय अजीवसे—कर्मसे शरीरादिसे नहीं बदलती, और शरीरादि किसी पर द्रव्यकी अवस्था जीवसे नहीं बदलती।

(३) जीवमें जो अज्ञानदशा है वह सदैव एक-सी नहीं रहती।

(४) पहले अल्पज्ञान होता है और फिर उसमें वृद्धि होती है, तो वहाँ ज्ञानमें परिवर्तन होने का कारण द्रव्यत्व गुण है;

और ज्ञानका विकास ज्ञान गुणमें से ही होता है, किन्तु शास्त्रा-
दिसे—बाह्यसे ज्ञान नहीं आता।

(५) मिट्टी में से घड़ा द्रव्यत्वगुणके कारण हुआ है; कुम्हा-
रादि तो निमित्तमात्र हैं। निश्चयसे देखने पर कुम्हारने
घड़ा नहीं बनाया है। मिट्टी की अवस्था कुम्हारने परिवर्तित
की—ऐसा मानने वाले ने द्रव्यत्व गुणको नहीं माना है।
पदार्थ के एक गुणको अस्वीकार करने से सम्पूर्ण द्रव्यका
अस्वीकार होता है और ऐसा होने से उसने अपने अभिप्राय
में सर्व द्रव्योंका अभाव माना है।

प्रश्न (१०९)—प्रत्येक द्रव्यमें अपना कार्य करने का सामर्थ्य काहे से है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्य द्रव्यत्व गुणके कारण नित्य परिणमन शक्तिवाला है, इसलिये निरन्तर अपना-अपना कार्य करता रहता है और उसमें उसका अपना वस्तुत्वगुण निमित्त कारण है।

प्रश्न (११०)—द्रव्यत्वगुण और वस्तुत्व गुणके भावमें क्या अन्तर है ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्यमें निरन्तर—प्रतिसमय* नई-नई अवस्थाएँ होती रहती हैं—ऐसा द्रव्यत्व गुण बतलाता है; और प्रत्येक द्रव्यमें प्रयोजनभूत क्रिया उसके अपने से हो रही है, कोई द्रव्य अपना कार्य किये विना नहीं रहता—ऐसा वस्तुत्व गुण बतलाता है।

(४) प्रमेयत्व गुण

प्रश्न (१११)—प्रमेयत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्य किसी न किसी ज्ञानका विषय हो उसे प्रमेयत्व गुण कहते हैं।

---

* समय=जिसका भाग न हो सके—ऐसा छोटेसे छोटा काल।

प्रश्न (११२)–"किसी न किसी ज्ञान" का क्या मतलब ?

उत्तर—मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान—इन पाँच में से कोई भी एक अथवा अधिक ज्ञान।

प्रश्न (११३)–जगत में कोई पदार्थ ऐसा है जो ज्ञात हुए बिना रहे ? यदि वह ज्ञात हुए बिना रहे तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो ज्ञात हुए बिना रहे। यदि वह ज्ञात हुए बिना रहे तो प्रमेयत्व गुणका नाश हो—जाये, और एक गुणका नाश होने से उसके साथके अस्तित्वादि समस्त गुणों का भी नाश हो जायेगा। ऐसा होने से द्रव्य ही नहीं रहेगा।

प्रश्न (११४)–जगतमें कितने द्रव्य प्रमेयत्व गुणवाले हैं ? उसका कारण बतलाइये।

उत्तर—समस्त द्रव्य प्रमेयत्व गुणवाले हैं; क्योंकि वह गुण सभी द्रव्योंका सामान्य गुण है।

प्र० (११५)–रूपी पदार्थ ज्ञान में ज्ञात होते हैं किन्तु अरूपी पदार्थ ज्ञात नहीं होते–यह कथन बराबर है ?

उत्तर–नहीं; क्योंकि प्रत्येक द्रव्य प्रमेयत्व गुणवाला है। प्रत्येक पदार्थ किसी न किसी ज्ञान का विषय होता है, इसलिये रूपी और अरूपी दोनों पदार्थ अवश्य ही बराबर ज्ञात होते हैं।

प्रश्न (११६)–आत्मा तो अरूपी है और हमारा ज्ञान अत्यन्त अल्प है; तो आत्मा का ज्ञान कैसे हो सकता है ?

उत्तर—ऐसा होनेपर भी आत्माका ज्ञान बराबर हो सकता है; क्योंकि उसमें (आत्मामें) भी प्रमेयत्व गुण विद्यमान है, और वह सम्यक्मति तथा श्रुतज्ञानका विषय हो सकता है, इसलिये यथार्थ समझका पुरुषार्थ किया जाये तो आत्मा का ज्ञान अवश्य हो सकता है।

प्रश्न (११७)–"आत्मा अलख–अगोचर है"–इसका क्या मतलब ?

उत्तर—जड़ इन्द्रियों से, विकल्प (-राग) से और पराश्रय से आत्मा ज्ञात नहीं होता, इसलिये उसे अलख–अगोचर कहा जाता है; किन्तु आत्मा में ज्ञान गुण तथा प्रमेयत्व गुण होने के कारण स्व-संवेदन ज्ञान से वह अवश्य ज्ञात हो–अनुभव में आये ऐसा है–यही उसका अर्थ समझना चाहिये।

प्रश्न (११८)–ज्ञान करने की और ज्ञात होनेकी–यह दोनों शक्तियाँ एक साथ किसमें हैं ?

उत्तर—ज्ञान करनेकी ज्ञाताशक्ति और ज्ञात होने की प्रमेयत्व–ज्ञेय शक्ति दोनों शक्तियाँ (-गुण) एक ही साथ जीव द्रव्य में ही हैं।

प्रश्न (११९)–ज्ञात होने की शक्तिका नाम और उसका व्युत्पत्ति–अर्थ क्या है ?

उत्तर—ज्ञात होने की शक्ति का नाम प्रमेयत्व गुण है; उसका व्युत्पत्ति–अर्थ निम्नानुसार है:—

प्रमेयत्व = प्र + मेय + त्व।

प्र = प्रकृष्ट रूप से; विशेषतः।

मेय = माप में आने योग्य (मा धातु का विध्यर्थ कृदन्त)

त्व = पना (भाववाचक प्रत्यय)

प्रमेयत्व = प्रकृष्टरूप से माप में (ज्ञान में–ख्याल में) आने योग्य-पना।

(५) अगुरुलघुत्व गुण

प्रश्न (१२०)–अगुरुलघुत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस शक्तिके कारण द्रव्य का द्रव्यत्व बना रहे अर्थात्:—

(१) एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता,

(२) एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता,

(३) द्रव्य में विद्यमान अनंत गुण बिखरकर अलग-अलग न हो जायें, उस शक्तिको अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१२१)–जीव द्रव्य में अगुरुलघुत्व गुण के कारण उसके द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावकी मर्यादा बतलाओ।

उत्तर—(१) अनंत गुणों के पिण्डरूप जीव द्रव्य का स्व-द्रव्यत्व स्थायी रहता है और वह कभी शरीरादिरूप नहीं होता।

(२) जीवका असंख्यात प्रदेशी स्वक्षेत्र कभी पररूप नहीं होता, पर में एकमेक नहीं होता न मिल जाता और दो जीवोंका स्व-क्षेत्र भी कभी एक नहीं होता।

(३) जीव के एक गुण की पर्याय अन्य गुण की पर्यायरूप नहीं होती (दूसरे का कुछ करे, दूसरे से उत्पन्न हो–बदले ऐसा नहीं होता।

(४) भाव अर्थात् गुण; जितने जिसरूप हैं उतने उसीरूप सत् रहते हैं बिखरकर अलग-अलग नहीं होते।

प्रश्न (१२२)–जीव द्रव्य की उपरोक्तानुसार मर्यादा समझने से क्या लाभ ?

उत्तर—(१) छहों द्रव्य और उनके गुण तथा पर्यायों की स्वतंत्रता जानने पर अपना हित-अहित (-भला-बुरा) अपने से अपने में ही होता है–ऐसा यथार्थ ज्ञान होता है;

(२) कोई भी द्रव्यकर्म अथवा किसी पर के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव इस जीव को लाभ-हानि नहीं कर सकते–ऐसा निर्णय होता है;

(३) मैं स्वतंत्र ज्ञानानन्दस्वभावी पदार्थ हूँ और जगत् के समस्त

पदार्थ मुझसे त्रिकाल भिन्न हैं–ऐसी भेद ज्ञानरूप ज्योतिका उदय होता है। वही सम्यक्ज्ञान दर्शनरूप धर्म है।

प्रश्न (१२३)–बाह्य द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार पर्याय बदलती है–ऐसा मानने में क्या दोष ?

उत्तर—दो द्रव्यों को भिन्न-भिन्न स्वतंत्र नहीं माना और द्रव्य में अगुरुलघुत्व का स्वीकार भी नहीं किया; इसलिये द्रव्य का ही नाश आदि दोष आते हैं।

प्रश्न (१२४)–छहों द्रव्य तथा उनके गुण-पर्यायकी स्वतंत्रता की मर्यादा किस गुण से है ?

उत्तर—अगुरुलघुत्व गुण से।

प्रश्न (१२५)–अगुरुलघुत्व गुण से विशेष क्या समझना ?

उत्तर—(१) कोई भी द्रव्य अन्य द्रव्यके आधीन नहीं है।

(२) एकद्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता।

(३) द्रव्य का एक गुण उसी द्रव्य के दूसरे गुण का कुछ नहीं कर सकता।

(४) किसी द्रव्य की पर्याय अन्य द्रव्य की पर्याय में कुछ नहीं कर सकती; वे एक-दूसरे के आधीन नहीं हैं।

(५) अगुरुलघुत्व गुणका ऐसा यथार्थ स्वरूप जानने से—जगत के छहों द्रव्यों के द्रव्य-गुण-पर्याय भिन्न-भिन्न स्वतंत्र हैं, और मैं ज्ञानस्वभावी आत्मा उन सबसे भिन्न हूँ—इसप्रकार भेदज्ञानरूपी अपूर्व धर्म प्रगट होता है।

प्रश्न (१२६)–एक द्रव्यमें रहने वाले गुण परस्पर एक–दूसरे का कार्य करते हैं ?—नहीं करते तो उनकी व्यवस्था कैसी है ?

उत्तर—अगुरलघुत्व के कारण एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता,

इसलिये एक गुणका कार्य क्षेत्र दूसरे गुणमें नहीं जाता;—ऐसा होने से एक द्रव्यमें भी एक गुण दूसरे गुणका कार्य नहीं कर सकता, किन्तु प्रत्येक गुण नित्यपरिणाम स्वभावी होने से प्रति-समय अपनी नई-नई पर्यायें उत्पन्न करता है, उसमें दूसरे गुण की पर्यायें निमित्तमात्र कही जाती हैं। एक गुणकी वर्तमान पर्यायमें कार्य होने से दूसरे गुणकी वर्तमान-पर्याय निमित्त कह-लाती है।—इसप्रकार एक द्रव्यके आश्रित गुणोंमें भी स्वतं-त्रता होने से एक गुणका दूसरे गुणके साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है।

"पंचाध्यायी" अध्याय २, गाथा १००८–१० में भी कहा है कि–"कोई भी गुण किसी प्रकार दूसरे गुणमें अन्तर्भूत नहीं होता-(एक गुणमें दूसरे गुण नहीं समा जाते)। परस्पर आधार–आधेय तथा उपादान–उपादेयरूपसे (कारण–कार्यरूप से) दो गुणों का सम्बन्ध नहीं है, किन्तु सभी गुण अपनी-अपनी शक्तिके योगसे स्वतंत्र हैं और वे भिन्न-भिन्न लक्षणवाले अनेक हैं, तथापि स्वद्रव्यके साथ परस्पर एकमेक हैं।"

प्रश्न (१२७)–गुरुका ज्ञान शिष्यको प्राप्त हुआ; मुझे शास्त्रोंसे ज्ञान की प्राप्ति हुई—यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि एक द्रव्यके अनंत गुणोंमें से एक गुण दूसरे गुणमें नहीं जाता; तो फिर भिन्न द्रव्यके गुण दूसरे द्रव्यमें कैसे जायेंगे ? एक वस्तुका कोई भी गुण दूसरी को मिलता है—ऐसी मान्यतावाला अगुरुलघुत्व गुणको नहीं मानता; वह वस्तु को ही स्वतंत्र नहीं मानता।

प्रश्न (१२८)–मैं चश्मे द्वारा पुस्तक पढ़ रहा हूँ और उससे मुझे ज्ञान होता है—ऐसा मानना बराबर है ?

उत्तर—नहीं; अगुरुलघुत्व गुणके कारण ऐसा नहीं होता, क्योंकि:—

(१) परसे आत्माका और आत्मासे परका कार्य हो तो द्रव्य बदलकर नष्ट हो जाये, लेकिन ऐसा नहीं होता।

(२) आत्मा निश्चय से स्व-पर प्रकाशक अपने आत्माको जानता है और—

(३) पुस्तक के शब्दों को जीव अपने ज्ञान द्वारा व्यवहार से जानता है; वहाँ चश्मा उसमें निमितमात्र है।

प्रश्न (१२९)–ब्राह्मी तेल के प्रयोग से या बादाम आदि खाने से बुद्धि बढ़ती है—यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि एक द्रव्यकी शक्ति दूसरे द्रव्यका कोई काम नहीं कर सकती; इसलिये ब्राह्मी तेल आदि का उपयोग करने से या बादाम खाने से बुद्धि बढ़ती है वह मान्यता झूठी है—ऐसा अगुरुलघुत्व गुण बतलाता है।

प्रश्न (१३०)–दूधमें मट्ठे के मिलने से दही बन जाता है—यह मान्यता बराबर है ?

उत्तर—नहीं; दूधमें मट्ठे के मिलने से दही बनता हो तो पानी में मट्ठा मिलाने से भी दही बनना चाहिये; मट्ठे के और दूधके परमाणु पृथक्-पृथक् हैं। मट्ठारूप पर्यायवाले प्रत्येक परमाणुमें भी अगुरुलघुत्व गुण होने से वह दूध के परमाणुमें प्रविष्ट नहीं हो सकता, किन्तु द्रव्यत्वगुणके कारण दूधरूप पर्यायवाले परमाणु स्वयं परिवर्तित होकर दहीरूप होते हैं; उसमें मट्ठा तो निमित्तमात्र है। जब दूधके परमाणु अपने क्षणिक उपादानकी

योग्यतासे दहीरूप होने का कार्य करते हैं उससमय मट्ठा आदि को निमित्तमात्र कहा जाता है।

प्रश्न (१३१)–इससे सिद्धान्त क्या समझें ?

उत्तर—जीव जब स्वयं अपने से स्वसन्मुख होकर अपना स्वरूप सम्यक्रूपसे समझता है उस समय सम्यक्ज्ञानी का उपदेश आदि निमित्तरूप होता है।—इसप्रकार सर्वत्र उपादानसे ही कार्य होता है; किसी निमित्त की कभी प्रतीक्षा नहीं करना पड़ती किन्तु निमित्त उस समय होता अवश्य है।

प्रश्न (१३२)–आत्मा मोक्षदशा प्राप्त करे उससमय तेजमें तेज मिल जाता है—ऐसा माना जाये तो क्या दोष आता है ?

उत्तर—(१) ऐसा मानने वाले ने अगुरुलघुत्व गुण और अस्तित्व-गुणका स्वीकार नहीं किया;

(२) मोक्ष जाने वाला जीव स्वतंत्र और सुखी न हुआ किंतु उसका नाश होगया।

—इसप्रकार जो मोक्षदशा होने पर दूसरे में मिल जाना मानता है वह अपना भी मोक्षमें नाश मानता है; इसलिये ऐसा धर्म कौन चतुर पुरुष करेगा कि—जिसमें स्वयंका विनाश हो जाये ?—अर्थात् नहीं करेगा।

प्रश्न (१३३)–जीव संसारदशामें जब एकेन्द्रियपने को प्राप्त हो तब उसके गुण कम हो जायें और जब पंचेन्द्रियपने को प्राप्त हो तब बढ़ जायें—ऐसा होता है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि—

(१) द्रव्यमें अगुरुलघुत्व नामक गुण है, इसलिये उसके किन्हीं गुणों की संख्या कभी कम-अधिक नहीं होती।

६

(२) द्रव्य और गुण तो सदैव सर्व अवस्थाओं में पूर्ण शक्तिवान् ही रहते हैं।

(३) अपने कारण गुणकी वर्तमान पर्यायमें ही परिवर्तन (परिणमन) होता है।

(६) प्रदेशत्व गुण

प्रश्न (१३४) प्रदेशत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर–जिस शक्तिके कारण द्रव्यका कोई न कोई आकार अवश्य हो उसे प्रदेशत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१३५)–आत्माको साकार और निराकार किसप्रकार कहा जाता है ?

उत्तर—प्रदेशत्व गुणके कारण प्रत्येक आत्माका अपना अरूपी आकार है ही; किन्तु रूपी आकार नहीं है उस अपेक्षासे वह निराकार कहलाता है। आत्माका अरूपी आकार इन्द्रियगम्य नहीं है—इस अपेक्षासे निराकार है और आत्माका आकार ज्ञानगम्य है, इसलिये वह आकारवान् है।

(देहली से प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक—पृष्ठ १६१)

प्रश्न (१३६)–द्रव्य, गुण, पर्याय–तीनों का भिन्न-भिन्न अथवा छोटा-बड़ा आकार होता है ?

उत्तर—नहीं; द्रव्यका आकार ही गुण और पर्याय का आकार है। क्योंकि तीनों का क्षेत्र एक है, इसलिये तीनों का आकर एक ही समान है।

प्रश्न (१३७)–द्रव्य त्रिकाल और पर्याय एक समय पर्यन्त की है, उसमें किसका आकार बड़ा है ?

उत्तर—दोनों का आकार एक-सा है।

प्रश्न (१३८)–कुछ वस्तुओं का आकार तो दीर्घ काल तक एक-सा दिखाई देता है, तो उसे परिवर्तित होने में कितना समय लगता होगा ?

उत्तर—वे निरन्तर प्रतिसमय बदलते ही रहते हैं, किन्तु स्थूल दृष्टिसे उनका आकार दीर्घ काल तक एक-सा दिखाई देता है।

प्रश्न (१३९)–सुवर्ण के पिण्ड में से मुकुट बना, तो उसमें कौन-सा गुण कारण है ?

उत्तर—आकार बना उसमें प्रदेशत्व गुण और पुरानी अवस्था बदल कर नई हुई उसमें द्रव्यत्व गुण कारण है।

प्रश्न (१४०)–इस "पुस्तक में" छहों सामान्य गुण घटित करो।

उत्तर—(१) इस पुस्तक में उसके परमाणुओं का कभी नाश नहीं होता, क्योंकि उसमें अस्तित्व गुण है।

(२) उस में अर्थ क्रिया है, क्योंकि उसमें वस्तुत्व गुण है।

(३) उसकी पर्याय में निरन्तर प्रति समय नया परिवर्तन होता है; क्योंकि उसमें द्रव्यत्व गुण है।

(४) वह ज्ञात होने योग्य है, क्योंकि उसमें प्रमेयत्व गुण है।

(५) उसका कोई भी परमाणु बदलकर दूसरे परमाणुरूप नहीं होता। उसके सभी गुण-पर्यायें भी उसकी मर्यादा में व्यवस्थित हैं, क्योंकि उसमें अगुरुलघुत्व गुण है।

(६) वह आकार युक्त है, क्योंकि उसमें प्रदेशत्व गुण है।

प्रश्न (१४१)–मिट्टी द्वारा घड़ा बना है–कुम्हार द्वारा नहीं बना;– इससें कौनसे गुण सिद्ध होते हैं ?

उत्तर—द्रव्यत्व और अगुरुलघुत्व गुणों की।

प्रश्न (१४२)–जो नहीं जानते–ऐसे जड़ द्रव्य भी स्वतः परिणमित

होते हैं–उसमें कौनसा गुण सिद्ध हुआ ?

उत्तर—द्रव्यत्व गुण।

प्रश्न (१४३)–हम मनुष्य हैं इसलिये हमें अपने कार्य में दूसरों की आवश्यकता होती है, दूसरों के बिना नहीं चल सकता–ऐसा मानने वाले ने कौन-से गुणों को नहीं माना ?

उत्तर—मनुष्य तो असमान जातीय द्रव्यपर्याय है। शरीर अजीव रूपी पुद्गल द्रव्य है और जीव सदा अरूपी चेतन द्रव्य है। उनका संयोग–एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध बन्धरूप से है। एक द्रव्यको दूसरे द्रव्य की आवश्यकता होती है–ऐसा मानने वाले ने वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्वादि गुणों कों नहीं माना।

प्रश्न (१४४)–जो द्रव्य हैं उनका कभी नाश नहीं होता और न वे दूसरे द्रव्यों के साथ मिलते हैं,–न एकमेक होते हैं–उसमें कौन-से गुण कारण भूत हैं ?

उत्तर—अस्तित्वगुण और अगुरुलघुत्व गुण।

प्रश्न (१४५)–जो स्वभाव है वह गुप्त नहीं रहता, वह किसी में मिल जाता नहीं,—नष्ट नहीं होता, परिवर्तित हुए बिना नहीं रहता—उसमें कौन-से गुण कारणभूत हैं ?

उत्तर—उसमें अनुक्रमसे प्रमेयत्व, अगुरुलघुत्व, अस्तित्व और द्रव्यत्व गुण कारण भूत हैं।

प्रश्न (१४६)–छहों सामान्य गुणोंका प्रयोजन संक्षेप में क्या है ?

उत्तर—(१) किसी द्रव्यकी कभी उत्पत्ति या विनाश नहीं है, इसलिये कोई किसीका कर्ता नहीं है—ऐसा अस्तित्वगुण सूचित करता है।

(२)प्रत्येक द्रव्य निरन्तर अपनी ही प्रयोजनभूत क्रिया करता है, इसलिये कोई द्रव्य एक समय भी अपने कार्य बिना बेकार नहीं होता–ऐसा वस्तुत्वगुण बतलाता है ।

(३) प्रत्येक द्रव्य निरन्तर प्रवाह क्रम से प्रवर्तमान अपनी नई-नई अवस्थाओं को सदैव स्वयं ही बदलता है, इसलिये किसी के कारण पर्याय परिवर्तित हो या रुके ऐसा पराधीन कोई द्रव्य नहीं है–ऐसा द्रव्यत्व गुण बतलाता है ।

(४) प्रत्येक द्रव्य में ज्ञात होने योग्यपना (-प्रमेयत्वगुण) होनेके कारण ज्ञान से कोई अनजान (गुप्त) नहीं रह सकता; इसलिये कोई ऐसा माने कि हम अल्पज्ञों को नव तत्त्व क्या ? आत्मा क्या ? धर्म क्या ?–यह सब ज्ञात नहीं होसकता; तो उसकी वह मान्यता मिथ्या है; क्यों कि यदि यथार्थ समझ का पुरुषार्थ करे तो सत्य और असत्यका स्वरूप (सम्यक् मति–श्रुतज्ञान का विषय होने से) उसके ज्ञान में अवश्य ज्ञात हो–ऐसा प्रमेयत्व गुण बतलाता है ।

(५) प्रत्येक द्रव्यका द्रव्यत्व नित्य व्यवस्थित रहता है, इसलिये एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ नहीं कर सकता; पर्याय द्वारा भी कोई दूसरे पर असर, प्रभाव, प्रेरणा, लाभ–हानि कुछ नहीं कर सकता ।

प्रत्येक द्रव्य अपनी क्रमबद्ध धारावाही पर्याय द्वारा अपने में ही वर्तता है ।—इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने में व्यवस्थित नियत मर्यादावाला होने से किसी द्रव्यको दूसरे की आवश्यक्ता नहीं होती—ऐसा अगुरुलघुत्व गुण बतलाता है ।

(६) कोई वस्तु अपने स्वक्षेत्ररूप आकार बिना नहीं होती, और

आकार छोटा-बड़ा हो वह लाभ-हानि का कारण नहीं है, तथापि प्रत्येक द्रव्यको स्व-अवगाहनारूप अपना स्वतंत्र आकार अवश्य होता है—ऐसा प्रदेशत्व गुण बतलाता है।

—इसप्रकार छहों सामान्यगुण प्रत्येक द्रव्यकी स्वतंत्र व्यवस्था बतलाते हैं।

विशेष गुण

प्रश्न (१४७)—प्रत्येक द्रव्यमें कौन-कौन से विशेष गुण हैं ?

उत्तर—(१) जीव द्रव्यमें—चैतन्य (दर्शन-ज्ञान), श्रद्धा (सम्यक्त्व) चारित्र, सुख, वीर्य. क्रियावतीशक्ति, वैभाविकशक्ति आदि।

(२) पुद्गल द्रव्यमें—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, क्रियावती शक्ति, वैभाविक शक्ति आदि।

(३) धर्मास्तिकाय द्रव्यमें—गतिहेतुत्व आदि।

(४) अधर्मास्तिकाय द्रव्यमें—स्थिति हेतुत्व आदि।

(५) आकाश द्रव्यमें—अवगाहनहेतुत्व आदि।

(६) कालद्रव्य में—परिणमनहेतुत्व आदि।

प्रश्न (१४८)—चेतन, चैतन्य और चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जीवद्रव्य को चेतन कहते हैं।

(२) चैतन्य वह चेतनद्रव्य का गुण है; उसमें दर्शन और ज्ञान—इन दोनों गुणों का समावेश हो जाता है।

(३) चैतन्यगुण की पर्याय को चेतना कहा जाता है।

(४) चैतन्य गुणको भी चेतना गुण कहा जाता है।

प्रश्न (१४९)—चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पदार्थों का प्रतिभास हो उसे चेतना कहते हैं।

प्रश्न (१५०)—चेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं–दर्शनचेतना (-दर्शनोपयोग), और ज्ञान चेतना (-ज्ञानोपयोग) ।

प्रश्न (१५१)–दर्शन चेतना किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पदार्थोंके भेदरहित सामान्य प्रतिभास (अवलोकन) हो उसे दर्शनचेतना कहते हैं; जैसे कि–ज्ञान का उपयोग घड़े की ओर था, वहाँ से छूटकर दूसरे पदार्थ सम्बन्धी ज्ञानोपयोग प्रारम्भ हो उससे पूर्व जो चैतन्य का सामान्य प्रतिभासरूप व्यापार हो वह दर्शनोपयोग है ।

प्रश्न (१५२)–ज्ञानचेतना (ज्ञानोपयोग) किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिसमें पदार्थों का विशेष प्रतिभास हो उसे ज्ञानोपयोग कहते हैं; अर्थात् ज्ञान गुणका अनुसरण करके वर्तनेवाला जो चैतन्य परिणाम वह ज्ञानोपयोग है ।

प्रश्न (१५३)–दर्शनचेतना के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, और केवलदर्शन; वे दर्शनगुणका अनुसरण करके वर्तनेवाले चैतन्य परिणाम हैं ।

प्रश्न (१५४)–चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षुइन्द्रिय द्वारा मतिज्ञान होनेसे पूर्व जो सामान्य प्रतिभास हो उसे चक्षुदर्शन कहते हैं ।

प्रश्न (१५५)–अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान होने से पूर्व जो सामान्य प्रतिभास हो उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं ।

प्रश्न (१५६)–अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—अवधिज्ञान होने से पूर्व जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

प्रश्न (१५७)–केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर—केवलज्ञानके साथ होनेवाले सामान्य प्रतिभास को केवल-दर्शन कहते है।

—(आत्मा स्व-परका दर्शक और ज्ञायक है।)

प्रश्न (१५८)–दर्शनोपयोग कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर—छद्मस्थ जीवों को ज्ञानोपयोगसे पूर्व और केवलज्ञानियों को ज्ञानोपयोगके साथ ही दर्शनोपयोग होता है।

प्रश्न (१५९)–ज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—ज्ञान गुण तो नित्य एकरूप ही होता है, किन्तु उसकी सम्यक्-पर्याय के पाँच भेद हैं—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।—यह पाँचों सम्यक्ज्ञान के भेद हैं।

मिथ्याज्ञान की तीन पर्यायें हैं—कुमति, कुश्रुत और कुअवधि।–इसप्रकार आठ पर्यायें हुईं।

प्रश्न (१६०)–मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) पराश्रय की बुद्धि छोड़कर दर्शनोपयोग पूर्वक स्वसन्मुखना से प्रगट होने वाले निज आत्मा के ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

(२) जिसमें इन्द्रिय और मन निमित्तमात्र हैं–ऐसे ज्ञान को मति-ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न (१६१)–श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से अन्य पदार्थ को जाननेवाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं।

(२) आत्मा की शुद्ध अनुभूतिरूप श्रुतज्ञानको भावश्रुत ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न (१६२) अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र,काल और भावकी मर्यादापूर्वक जो रूपी पदार्थोंको स्पष्ट जाने उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न (१६३)–मनःपर्यय ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को मर्यादा पूर्वक अन्य के मन में तिष्ठते हुए रूपी पदार्थ सम्बन्धी विचारों को तथा रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं।

(श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान से सिद्ध होता है कि प्रत्येक द्रव्य में क्रमबद्ध पर्याय होती है–आगे-पीछे नहीं होते।

प्रश्न (१६४)–केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो तीनलोक-तीनकालवर्ती सर्व पदार्थों को (अनन्त-धर्मात्मक* सर्व द्रव्य-गुण-पर्यायों को) प्रत्येक समयमें यथास्थित परिपूर्णरूप से स्पष्ट और एक साथ जाने उसे केवलज्ञान कहते हैं।

---

* द्रव्य, गुण, पर्यायों को केवलीभगवान जानते हैं, किन्तु उनके अपेक्षित धर्मोंको नहीं जान सकते–ऐसा मानना असत्य है। वे अनंतको अथवा मात्र अपने आत्मा को ही जानते हैं। किन्तु सर्व को नही जानते–ऐसा मानना भी न्याय से विरुद्ध है। केवलज्ञानी भगवान सर्वज्ञ होने से अनेकान्तात्मक प्रत्येक वस्तु को प्रत्यक्ष जानते हैं। केवली के ज्ञानमें कुछ भी ज्ञात हुए बिना नहीं रहता।

प्रश्न (१६५)–श्रद्धा गुण (सम्यक्त्व) किसे कहते हैं ?

उत्तर—(१) जिस गुणकी निर्मलदशा प्रगट होने से अपने शुद्ध आत्माका प्रतिभास (यथार्थ प्रतीति) हो उसे श्रद्धा (सम्यक्त्व) कहते हैं।

(२) सम्यक्दृष्टि को निम्नानुसार प्रतीति होती है:—

१–सच्चे देव, गुरु और धर्ममें दृढ़ प्रतीति।

२–जीवादि सात तत्त्वों की सच्ची प्रतीति।

३–स्व-पर का श्रद्धान।

४–आत्मश्रद्धान।

उपरोक्त लक्षणों के अविनाभाव सहित जो श्रद्धा होती है वह निश्चय सम्यक्दर्शन है। [इस पर्यायका धारक श्रद्धा (-सम्यक्त्व) गुण है; सम्यक्दर्शन और मिथ्यादर्शन उसकी पर्यायें हैं।]

प्रश्न (१६६)–चारित्र गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय सम्यक्दर्शन सहित स्वरूपमें विचरण–रमण करना अपने स्वभाव में अकषाय प्रवृत्ति करना वह चारित्र है। वह चारित्र मिथ्यात्व और अस्थिरता रहित अत्यन्त निर्विकार* ऐसा जीवका परिणाम है, और ऐसी पर्यायोंको धारण करनेवाले गुण को चारित्र गुण कहते हैं।

प्रश्न (१६७)–सुख गुण किसे कहते हैं ?

---

*ऐसे परीणामों को स्वरूप स्थिरता, निश्चलता, वीतरागता, साम्य, धर्म और चारित्र कहते हैं। जब आत्मा के चारित्र गुण की ऐसी शुद्ध पर्याय उत्पन्न होती है तब बाह्य और अभ्यन्तर क्रिया का यथासम्भव (भूमिकानुसार) निरोध हो जाता है।

उत्तर—निराकुल आनन्द स्वरूप आत्माके परिणाम विशेष को सुख कहते हैं, और वह पर्याय धारण करनेवाले गुणको सुख गुण कहते हैं।

आत्मा में सुख अथवा आनन्द नामका एक अनादि-अनंत गुण है। उसका सम्यक् परिणमन होने पर मन, इन्द्रियाँ और उनके विषयों से निरपेक्ष अपने आत्माश्रित निराकुलता लक्षण-वाला सुख उत्पन्न होता है। उसके कारण रूप शक्ति वह सुख गुण है।

अनाकुलता जिसका लक्षण अर्थात् स्वरूप है ऐसी सुखशक्ति आत्मामें नित्य है। (समयसार में वर्णित ४७ शक्तियों में से)

प्रश्न (१६८) क्रियावती शक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—जीव और पुद्गल द्रव्यमें क्रियावती शक्ति नामका विशेष गुण है। उसके कारण जीव और पुद्गल को अपनी-अपनी योग्यता-नुसार कभी गमन—क्षेत्रान्तर-गतिरूप पर्याय होती है और तभी स्थिरतारूप।

[कोई द्रव्य (जीव या पुद्गल) एक—दूसरे को गमन या स्थिरता रूप नहीं कर सकते। दोनों द्रव्य अपनी क्रियावती शक्ति की उस समय की योग्यतानुसार स्वतः गमन करते हैं या स्थिर रहते हैं।]

प्र० (१६९):— मोटर पेट्रोल से चलती है या उसे ड्राईवर चलाता है ?

उ०:— मोटर पेट्रोलसे या ड्राईवर से नहीं चलती; किन्तु उसके प्रत्येक परमाणु में क्रियावती शक्ति है अपने क्षणिक उपादान की

योग्यता से ही वह चलती है। स्थिर रहने योग्य हो उस समय अपनी क्रियावती शक्ति के कारण ही वह स्थिर रहती है—अन्य तो निमित्त मात्र हैं। निमित्त से उपादान का कार्य नहीं होता किन्तु संयोग का ज्ञान कराने के लिये उपचार से वैसा कथन होता है।

प्र० (१७०):—"सिद्ध भगवान हुए वह लोकाग्र में ही स्थिर हैं; वे सचमुच धर्मास्तिकाय के अभाव से लोक के ऊपर नहीं जाते"—यह बराबर है ?

उ०:— नहीं; क्योंकि जो जीव सिद्ध परमात्मदशा प्रगट करे वह भी लोक का द्रव्य है, इसलिये वह एक समय में लोक पर्यंत जाने की ही खास योग्यता रखता है। धर्मास्तिकाय के अभाव को उसका कारण कहना वह निमित्त का ज्ञान कराने के लिये व्यवहारनय का कथन है; निश्चय से वैसी योग्यता ही न हो तो निमित्त में इसप्रकार कारणपने का आरोप नहीं आ सकता।

प्र० (१७१):— वीर्य गुण किसे कहते हैं ?

उ०:— आत्मा की शक्ति-सामर्थ्य (बल) को वीर्य कहते हैं;

—अर्थात्—

स्वरूप रचना के सामर्थ्यरूप शक्ति को वीर्य गुण कहते हैं।

—(समयसार–४७ शक्तियों से)

अर्थात्

पुरुषार्थरूप परिणामों के कारणभूत जीव की त्रिकाली शक्ति को वीर्य गुण कहते हैं।

प्रश्न (१७२)—भव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस गुण के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट करने की योग्यता रहती है उस गुण को भव्यत्व गुण कहते हैं।

[भव्यत्व गुण सदैव भव्य जीवों में ही है और अभव्यत्व गुण सदैव अभव्य जीवों में है]

प्रश्न (१७३)–अभव्यत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस गुण के कारण आत्मा में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट करने की योग्यता नहीं होती उसे अभव्यत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१७४)–जीवत्व गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आत्म द्रव्य के कारणभूत चैतन्य मात्र भावरूप भावप्राण का धारण करना जिसका लक्षण है उस शक्ति को जीवत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (१७५)–प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—द्रव्य प्राण और भाव प्राण।

प्रश्न (१७६)–द्रव्य प्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दस भेद हैं—पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु।

—(यह सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें हैं। इन द्रव्य प्राणों के संयोग–वियोग से जीवों की जीवन–मरणरूप दशा व्यवहारसे कहलाती है।)

प्रश्न (१७७)–भाव प्राण किसे कहते हैं ?

उत्तर—चैतन्य और (भाव) बल प्राण को भावप्राण कहते हैं।

प्रश्न (१७८)–भावप्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं–भावेन्द्रिय और बलप्राण । यह भेद संसारी जीवों में हैं । भावेन्द्रियां सब चेतन हैं और वे ज्ञान की मतिरूप पर्यायें हैं । भाव बालप्राण जीवके वीर्य गुणकी पर्याय है और द्रव्य बलप्राण पुद्गलों की पर्याय है ।

प्रश्न (१७९)–भावेन्द्रिय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच भेद हैं—जीवकी भाव स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय—वे लब्धि और उपयोगरूप हैं।

प्रश्न (१८०)–भाव बलप्राण के कितने भेद हैं ?

उत्तर—तीन भेद हैं—मन वल, वचनबल और कायबल ।

प्रश्न (१८१)–वैभाविक शक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—वह एक विशेष भाववाला गुण है । उस गुणके कारण पर-द्रव्य (निमित्त) के सम्बन्ध पूर्वक स्वयं अपनी योग्यता से अशुद्ध पर्यायें होती हैं ।

—यह वैभाविक शक्ति नामका गुण जीव और पुद्गल दो द्रव्यों में ही है, शेष चार द्रव्यों में नहीं है ।

जीवके गुणों में स्वयंसिद्ध एक वैभाविक शक्ति है; वह जीवकी संसारदशामें अपने कारण स्वयं ही (अनादिकालसे) विकृत हो रही है । —(पंचाध्यायी–भाग २, गाथा ९४६)

मुक्तदशामें वैभाविक शक्तिका शुद्ध परिणमन होता है ।

—(पंचाध्यायी–भाग २, गाथा ८१)

मुक्त-स्वतंत्र पुद्गल परमाणु जब तक स्वतंत्र (अबंध पर्यायरूप) रहें तब तक उनके इस गुण की शुद्ध पर्याय होती है ।

प्र० (१८२):– इस वैभाविक शक्ति से विशेष क्या समझना ?

उ०:– जीव की वैभाविक शक्ति वह गुण है, इसलिये बंध का कारण नहीं है; उसका परिणमन भी बंध का कारण नहीं है; क्योंकि उसका परिणमन तो सिद्ध भगवन्तों के भी होता है।

यदि जीव पर पदार्थों के वश हो जाये तो उसकी पर्याय में विकार (अशुद्धता) होता है; वह जीव का अपना अपराध है। जीव जिस पर पदार्थ के वश होता है उसे निमित्त कहा जाता है। जीव ने विकार किया (स्वयं अशुद्ध भावरूप परिणमित हुआ) तब किस पर पदार्थ के वश हुआ वह बतलाने के लिये उस पर पदार्थों को निमित्तकारण और विकार को नैमित्तिक (कार्य) कहा जाता है। यह कथन भेदज्ञान कराने के लिये है; किन्तु निमित्त ने नैमितक पर कुछ असर किया अथवा प्रभाव डाला—ऐसा बतलाने के लिये वह कथन नहीं है; क्योंकि ऐसा माना जाये तो दो द्रव्यों की एकता माननेरूप मिथ्यात्व होजाता है; इसलिये ऐसा समझना चाहिये कि जीव के अपने दोष से ही अशुद्धता होती है और उसे जीव स्वयं करता है इसलिये वह दूर भी की जा सकती है।

जीव विकार (अशुद्ध दशा) अपने दोप से ही करता है, इस लिये अशुद्ध निश्चयनय से वह स्वकृत है; किन्तु स्वभाव दृष्टि के पुरुषार्थ द्वारा उसे अपने में से दूर किया जा सकता है, इसलिये शुद्ध निश्चयनय से वह परकृत है।

इन विकारों को शुद्ध निश्चयनय की दृष्टि से निम्नोक्त नामों द्वारा पहिचाना जाता है:—

परकृत, परभाव, पराकार, पुद्‌गलभाव, कर्मजन्य भाव, प्रकृति शील स्वभाव, परद्रव्य, कर्मकृत, तद्‌गुणाकार संक्रान्ति, परगुणाकार कर्मपदस्थित, जीव में होने वाले अजीवभाव, तद्‌गुणाकृति, परयोगकृत, निमित्तकृत आदि। किन्तु उससे वे परकृतादि नहीं हो जाते; मात्र अपने में से टाले जा सकते हैं इतना ही वे दर्शाते हैं।

—(देखो, गुजराती आवृत्ति पंचाध्यायी–भाग २, गाथा ७२ का भावार्थ)

उस पर्याय में अपना ही दोष है, अन्य किसी का उसमें किंचित् हाथ या दोष नहीं है। पंचाध्यायी-भाग २ की ६० वीं और ७६ वीं गाथा में—"जीव स्वयं ही अपराधी है"—ऐसा कहा है; इसलिये परद्रव्य या कर्म का उदय जीव में विकार करे—कराये, अथवा कर्मोदय के कारण जीव को विकार करना पड़ता है—ऐसी मान्यता मिथ्या है। निमित्त कारण तो उपचरित कारण है किन्तु वास्तविक कारण नहीं है; इसलिये उसे पंचाध्यायी-भाग २, गाथा ३५१ में अहेतुवत्—अकारणवत् कहा है।

प्र० (१८३):— ऐसे कौन से विशेष गुण हैं जो दो द्रव्यों में ही रहें ?

उत्तर— क्रियावती शक्ति और वैभाविक शक्ति—यह दो गुण जीव और पुद्‌गल द्रव्यों में ही रहते हैं।

प्र० (१८४):— क्रियावती शक्ति का क्या कार्य है ?

उत्तर— एक क्षेत्र से क्षेत्रान्तर होना अथवा गतिपूर्वक स्थिररूप से रहना।

प्रश्न (१८५)–क्रियावती शक्ति जानने से धर्म सम्बन्धी क्या लाभ होगा ?

उत्तर—मैं शरीरको चला सकता हूँ, स्थिर रख सकता हूँ, शरीर मुझे अन्य क्षेत्र में ले जाता है, मैं यह बोझ उठाता हूँ–इत्यादि गति-स्थिति की (परके क्षेत्रान्तर होने और स्थिर रहने की) स्वतंत्रता न माननेरूप घोर अज्ञान दूर हो जाये और अपने ज्ञाता स्वभाव से मैं सदैव ज्ञायक स्वरूप ही हूँ–ऐसा सच्चा निर्णय हो वही धर्म का मूल है।

प्रश्न (१८६)–अगर जीव शरीर को नहीं चलाता, तो फिर मुर्दा क्यों नहीं चलता ?

उत्तर—मुर्दा पुद्गल द्रव्यके अनेक स्कन्धों का पिण्ड है; उसके प्रत्येक परमाणु में क्रियावती शक्ति है, इसलिये उसकी अपनी योग्यतानुसार किसी समय उस परमाणु की गति अर्थात् क्षेत्रान्तर रूप पर्याय होती है;–और कभी स्थिर रहने रूप पर्याय होती है इस प्रकार मुर्दे के परमाणुओं की उस समय की अपनी योग्यता के कारण स्थिरतारूप पर्याय होती है, इसलिये वह चलता नहीं है।

जब वह घर से बाहर निकलता दिखाई देता है उस समय उसका जाना उसकी अपनी क्रियावतीशक्ति के कारण है; मनुष्य वगैरह तो निमित्त मात्र हैं।

प्रश्न (१८७)–चैतन्य गुण गति कर सकता है ?

उत्तर—हाँ; जब जीव क्षेत्रान्तररूप गमन करता है तब चैतन्यगुण (दर्शन और ज्ञान गुण) जीव के साथ अभेद होने से उसका भी गमन होता है; उसमें जीवकी क्रियावती शक्ति निमित्त है।

प्रश्न (१८८)–वर्ण गुण गमन कर सकता है ?

उत्तर—हाँ पुद्गल द्रव्य अपनी क्रियावती शक्ति से गमन करता है। वर्णं गुण उसके साथ अभेद होने से वह भी गमन करता है।

प्रश्न (१८९)–गतिहेतुत्व गुण एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाता है?

उत्तर—नहीं जाता; क्योंकि गतिहेतुत्व धर्मास्तिकाय द्रव्यका गुण है और वह द्रव्य तो त्रिकाल स्थिर रहनेवाला है; उसमें क्रियावती शक्ति नहीं है।

प्रश्न (१९०)–तो फिर गतिहेतुत्व का अर्थ क्या ?

उत्तर—जब जीव और पुद्गल स्वयं अपनी क्रियावती शक्तिके कारण गतिरूप परिणमित हों उस समय उन्हें लोकमें स्थिर और सर्व-व्यापक धर्म द्रव्य का वह गुण निमित्त होता है।–यही गतिहे-हेतुत्व का अर्थ है।

प्रश्न (१९१)–गतिहेतुत्व गुग स्वयं अपने साथ रहनेवाले अ य गुणों को गति करने में निमित्त है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि धर्मास्तिकाय स्वयं सदैव स्थिर है, इसलिये उसके गुण भी गति करते ही नहीं; वे तो स्वयं गमनरूप परिणमित होने वाले जीवों–पुद्गलों को ही गति में निमित्त हैं।

प्रश्न (१९२)–आकाश, धर्मद्रव्य और कालद्रव्य तो स्थिर हैं, तो क्या उन्हें अधर्म द्रव्य का निमित्त है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वे कभी भी गतिपूर्वक स्थिर रहनेवाले द्रव्य नहीं हैं, किन्तु त्रिकाल स्थिर हैं।

प्रश्न (१९३)–स्वयं अपने को तथा पर को निमित्त हों ऐसे द्रव्य कौन से हैं ?

उत्तर—आकाश और काल द्रव्य।

प्रश्न (१९४)–भूकम्प, समुद्र में आनेवाला ज्वार-भाटा, ज्वालामुखी

पर्वत का फटना, लांवा रस का प्रवाह—इनका यथार्थ कारण क्या है ?

उत्तर—वे सब पुद्गल द्रव्य की स्कंधरूप पर्यायें हैं, और उन-उन द्रव्यों के द्रव्यत्व गुण तथा क्रियावती शक्ति के कारण वे अवस्थाएँ होती हैं।

प्रश्न (१९५)–पेट्रोल खत्म हुआ और मोटर रुक गई, उसमें मोटर रुकने का कारण क्या ?

उत्तर—मोटर उसकालकी अपनी क्रियावती शक्ति के स्थिरता रूप परिणामके कारण रुकी है; उसमें पेट्रोल का ख़त्म होना तो निमित्तमात्र हैं।

प्रश्न (१९६)–रेलगाड़ी भाप से चलती है यह ठीक है ?

उत्तर—नहीं; उसके चलने में उसकी अपनी क्रियावती शक्ति का क्षेत्रान्तररूप परिणमन है वह सच्चा कारण है; भाप आदि तो निमित्तमात्र हैं।

प्रश्न (१९७)–वृक्षसे फल नीचे गिरा, उसमें पृथ्वी की आकर्षणशक्ति कारण है–यह सिद्धान्त बराबर है ?

उत्तर—नहीं; वह अपने परमाणुओं की क्रियावती शक्ति के गमनरूप परिणमन के कारण गिरता है, फल के डंठल का सड़ जाना, हवा का चलना आदि तो निमित्त मात्र हैं।

प्रश्न (१९८)–फव्वारे का पानी ऊपर उछलता है और झरने का पानी नीचे की ओर गिरता है—इसका क्या कारण ?

उत्तर—दोनों में उन–उन परमाणुओं की क्रियावती शक्तिका गमन-रूप परिणमन कारण है।

अनुजीवी और प्रतिजीवी गुण।

प्रश्न (१९९)–अनुजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—भाव स्वरूप गुणों को अनुजीवी गुण कहते हैं; जैसे कि— जीवके अनुजीवी गुण—चेतना (दर्शन-ज्ञान) श्रद्धा, चारित्र, सुख आदि; और पुद्गल के अनुजीवी गुण—स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि।

प्रश्न (२००)–प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—वस्तु के अभाव स्वरूप धर्म को प्रतिजीवी गुण कहते हैं; जैसे कि—नास्तित्व, अमूर्तत्व, अचेतनत्व आदि।

प्रश्न (२०१)–जीवके अनुजीवी गुण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—चेतना (दर्शन, ज्ञान), श्रद्धा (सम्यक्त्व), चारित्र, सुख, वीर्य, भव्यत्व, अभव्यत्व, जीवत्व, वैभाविकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, क्रियावतीशक्ति–आदि अनंत गुण।

प्रश्न (२०२)–जीवके प्रतिजीवी गुण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व, नास्तित्व,–इत्यादि।

प्रश्न (२०३)–अव्याबाध प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—वेदनीय कर्मके अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है उसे (उस गुणको) अव्याबाध प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०४)–अवगाहनत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—आयुकर्म के अभाव पूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है उसे (उस गुणको) अवगाहनत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०५)–अगुरुलघुत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—गोत्रकर्म के अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है और उच्च-नीचका व्यवहार भी दूर होता है उसे अगुरुलघुत्व गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०६)–सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर—नामकर्म के अभावपूर्वक जिस गुणकी शुद्धपर्याय प्रगट होती है उसे सूक्ष्मत्व प्रतिजीवी गुण कहते हैं।

प्रश्न (२०७)–दो ही द्रव्यों को लागू होते हैं—ऐसे अनुजीवी गुण कौन-से हैं ?

उत्तर—क्रियावती शक्ति और वैभाविक शक्ति–यह दोनों गुण जीव और पुद्गल द्रव्यमें ही हैं।

प्रश्न (२०८)–अजड़त्व किस द्रव्यका प्रतिजीवी गुण है ?

उत्तर—जीव द्रव्यका।

प्रश्न (२०९)–जड़त्व किस का अनुजीवी गुण है ?

उत्तर—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यका।

प्रश्न (२१०)–अचेतनपना और अमूर्तपना–यह दोनों प्रतिजीवी गुण एक साथ किन द्रव्यों में हैं ?

उत्तर—धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्य में।



प्रकरण तीसरा

पर्याय अधिकार

प्रश्न (२११)–पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—गुण के विशेष कार्य को (परिणमन को) पर्याय कहते हैं।

प्रश्न (२१२)–पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय।

प्रश्न (२१३)–व्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य के प्रदेशत्व गुण के विशेष कार्यको व्यंजन पर्याय कहते हैं।

प्रश्न (२१४)–व्यंजन पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो—स्वभावव्यंजनपर्याय और विभावव्यंजनपर्याय।

प्रश्न (२१५)–स्वभावव्यंजनपर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्त के संबंधरहित द्रव्यका जो आकार हो उसे स्वभाव व्यंजन पर्याय कहते हैं; जैसे कि–सिद्ध भगवानका आकार।

प्रश्न (२१६)–विभावव्यंजन पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्त के सम्बन्धवाले द्रव्यका जो आकार हो उसे विभावव्यंजन पर्याय कहते हैं; जैसे कि–जीवकी नर–नरकादि पर्यायें।

प्रश्न (२१७)–अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त शेष सम्पूर्ण गुणों के विशेष कार्य को अर्थपर्याय कहते हैं।

प्रश्न (२१८):—अर्थ पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तरः—दो भेद—स्वभाव अर्थ पर्याय और विभाव अर्थ पर्याय ।

प्रश्न (२१९):—स्वभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तरः—परनिमित्त के सम्बन्ध रहित जो अर्थ पर्याय होती है उसे स्वभाव अर्थ पर्याय कहते हैं, जैसे कि—जीव की केवलज्ञान पर्याय ।

प्रश्न (२२०)—विभाव अर्थ पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर—परनिमित्त के सम्बन्ध वाली जो अर्थ पर्याय होती है उसे विभाव अर्थ पर्याय कहते हैं; जैसे कि—जीव को राग-द्वेषादि ।

प्रश्न (२२१)—किन-किन द्रव्यों में कौन-कौनसी पर्यायें होती हैं ?

उत्तर—(अ) जीव और पुद्गल द्रव्यों में चार पर्यायें होती हैं—

(१) स्वभावअर्थपर्याय, (२) विभावअर्थपर्याय, (३) स्वभावव्यंजनपर्याय, (४) विभावव्यंजनपर्याय ।

(ब) धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में सिर्फ दो पर्यायें हैं:—

(१) स्वभाव अर्थ पर्याय, (२) स्वभाव व्यंजन पर्याय ।

प्रश्न (२२२)—" आकार " क्या अर्थ है ?

उत्तर—आकार प्रदेशत्व गुण की व्यंजन पर्याय है, इसलिये वह द्रव्य के सम्पूर्ण भाग में होती है। द्रव्य की मात्र बाह्याकृति को आकार नहीं कहा जाता, किन्तु उसके कद (Volume) को आकार कहा जाता है।

प्रश्न (२२३)—जीव का आकार किसप्रकार संकोच-विस्तार को प्राप्त होता है वह दृष्टान्त पूर्वक समझाइये ।

उत्तर—(१) भीगे-सूखे चमड़े की भाँति जीव के प्रदेश अपनी शक्ति से संकोच-विस्तार रूप होते हैं ।

(२) छोटे–बड़े शरीर प्रमाण संकोच–विस्तार होने पर भी और अपने एक-एक प्रदेशमें अपने दूसरे प्रदेश अवगाहना प्राप्त करने पर भी मध्यके आठ रुचकप्रदेश सदैव अचलित रहते हैं; अर्थात् एक दूसरे में अवगाहनाको प्राप्त नहीं होते।

प्रश्न (२२४)–सिद्ध दशामें जीवका आकार कितना और कैसा होता हैं ?

उत्तर—सिद्ध का आकार अन्तिम शरीर से किंचित् न्यून और पुरुषाकार होता है।

(बृहत् द्रव्यसंग्रह, गाथा १४, ५१ तथा टीका)

प्रश्न (२२५)–समान आकारवाले द्रव्य कौन से हैं ?

उत्तर—१–कालाणु और परमाणु पुद्गल द्रव्य;

२–धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय।

प्रश्न (२२६)–सबसे बड़ा आकार, सबसे छोटा आकार और उन दोनों के बीचवाले आकार के कौन से द्रव्य हैं ?

उत्तर—सबसे बड़ा आकार अनंत प्रदेशात्मक आकाशका और सबसे छोटा आकार एक प्रदेशी परमाणु तथा कालाणु का होता है। उन दोनों के बीचके आकारवाले असंख्य प्रदेशी जीव द्रव्य, धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय होते हैं।

प्रश्न (२२७)–प्रत्येक द्रव्यमें कौन-सी पर्याय एक और कौन-सी अनंत होती हैं ?

उत्तर—प्रत्येक द्रव्यमें प्रदेशत्व गुणके कारण व्यंजन पर्याय एक होती है और उस (द्रव्य) में अनंत गुण होंने से उसकी अर्थपर्यायें अनंत होती हैं।

प्रश्न (२२८)–जीवद्रव्य में विभावव्यंजन पर्याय कहाँ तक होती हैं ?

उत्तर—चौदहवें गुणस्थान*तक सर्व संसारी जीवोंको विभाव व्यंजन-पर्याय होती है, क्योंकि वहाँ तक जीवका पर-निमित्त (पौद्गलिक कर्म) के साथ सम्बन्ध रहता है।

प्रश्न (२२९)–सादि अनंत स्वभाव व्यंजन पर्याय और सादि अनंत स्वभाव-अर्थ पर्याय किसको होती है ?

उत्तर—सिद्ध भगवान को; क्योंकि उनके विकार और परनिमित्त का सम्बन्ध सर्वथा छूट गया है।

प्रश्न (२३०)–आकार में (व्यंजनपर्यायमें) अन्तर होने पर भी अर्थ-पर्याय में समानता हो–ऐसे द्रव्य कौन से और कितने हैं ?

उत्तर—ऐसे सिद्ध भगवान हैं और वे अनंत हैं।

प्रश्न (२३१)–त्रिकाल स्वभावअर्थपर्याय और स्वभावव्यंजनपर्याय किन द्रव्यों के होती है ?

उत्तर—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाश और काल–इन चार द्रव्यों के होती है।

प्रश्न (२३२)–पहले अर्थपर्याय शुद्ध हो और फिर व्यंजनपर्याय शुद्ध हो–ऐसा किन द्रव्यों में होता है ?

---

* मोह और योगके निमित्त से सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप आत्मा के गुणों की तारतम्यतारूप अवस्था-विशेष को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान १४ हैं:—१–मिथ्यात्व, २–सासादन ३–मिश्र, ४–अविरत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरति, ६-प्रमत्तविरत, ७-अप्रमत्त विरत, ८-अपूर्वकरण, ९-अनिवृत्तिकरण, १०-सूक्ष्मसाम्पराय, ११-उपशान्तमोह, १२-क्षीणमोह, १३-सयोगी-केवली, १४ अयोगी केवली।

उत्तर—ऐसा जीव द्रव्य में होता है; जैसे कि—चौथे गुणस्थानमें श्रद्धा गुण की पर्याय पहले शुद्ध होती है; बारहवें गुणस्थान में चारित्र गुण की अर्थपर्याय शुद्ध होती है; तेरहवें गुणस्थान में ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य गुणों की पर्यायें परिपूर्ण शुद्ध होती हैं; चौदहवें गुणस्थान में योग-गुण की पर्याय शुद्ध होती है, और सिद्ध दशा होने पर वैभाविक गुण, क्रियावती शक्ति तथा चार प्रतिजीवी गुण—अव्याबाध, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व, सूक्ष्मत्व—इत्यादिकी अर्थ पर्यायें शुद्ध होती हैं; और उसी समय व्यंजन पर्याय (प्रदेशत्व गुण की पर्याय) शुद्ध होती हैं, किन्तु वे पहले शुद्ध नहीं होतीं।

प्रश्न (२३३)—सादिसान्त स्वभावअर्थपर्याय और स्वभावव्यंजनपर्याय किस द्रव्यके एक साथ होती हैं ?

उत्तर—एक पुद्गल परमाणु के वे दोनों एकसाथ होती हैं। जब वह स्कन्ध में से पृथक् होता है तब शुद्ध होता है, लेकिन जब पुनः स्कन्धरूप परिणमित होता है तब वह अशुद्ध हो जाता है।

प्रश्न (२३४)—सवा पाँचसौ धनुषकी बड़ी अवगाहनावाले (आकारवाले) सिद्ध भगवन्तों को अधिक आनन्द और छोटी अवगाहनावाले सिद्धों को कम आनन्द—ऐसा होता होगा ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि सिद्धोंका आनन्द तो सुखगुणकी स्वभावअर्थपर्याय है, इसलिये सर्व सिद्ध भगवन्तोंको सदैव एक-सा ही अनंत सुख (आनन्द) होता है। सुख का व्यंजन पर्याय (क्षेत्र—आकार) के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न (२३५)—द्रव्य गुण और पर्याय—इन तीनों में सत् कौन है ? किसप्रकार है ?

उत्तर—तीनों सत् हैं। सत् द्रव्य, सत् गुण और सत् पर्याय–इसप्रकार सत्ता गुणका विस्तार है; उसमें सदृश सामान्य सत् द्रव्य तथा गुण नित्य सत् और पर्याय एक समय पर्यंत अनित्य सत् है।

(–प्रवचनसार गाथा १०७)

प्रश्न(२३६)–उत्पाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य में नवीन पर्यायकी उत्पत्ति को उत्पाद कहते हैं।

प्रश्न (२३७)–व्यय किसे कहते हैं ?

उत्तर—द्रव्य के पूर्व पर्याय के त्याग को व्यय कहते हैं।

प्रश्न (२३८)–ध्रौव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रत्यभिज्ञान* के कारणभूत द्रव्य की किसी अवस्था की नित्यता को ध्रौव्य कहते हैं।

प्रश्न (२३९)–उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य एक समय में ही होते हैं या भिन्न–भिन्न समय में ?

उत्तर—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य—यह तीनों एक ही समय में साथ ही वर्तते हैं।

प्रश्न (२४०)–वर्तमान अज्ञान दूर होकर सच्चा ज्ञान होनेमें कितना काल लगता है ?

उत्तर—एक समय; क्योंकि पर्याय प्रतिसमय बदलती है।

प्रश्न (२४१)–पर्यायें काहे में से उत्पन्न होती हैं ?

उत्तर—द्रव्य तथा गुणों से पर्यायें उत्पन्न होती हैं।

(प्रवचनसार गाथा ९३)

---

* स्मृति और प्रत्यक्ष के विषयभूत पदार्थों में एकरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं; जैसे कि–यह वही व्यक्ति है जिसे कल देखा था।

प्रश्न (२४२)–पर्याय तो अनित्य है; तो वह सत् है या असत् ?

उत्तर—सत् द्रव्य, सत् गुण और सत् पर्याय–इसप्रकार सत् का विस्तार है; इसलिये पर्याय भी एक समय पर्यंत सत् है। —(प्रवचनसार गाथा १०७)

प्रश्न (२४३)–गुण अंश है या अंशी ?

उत्तर—द्रव्यकी अपेक्षा से गुण उस द्रव्यका अंश है और पर्यायकी अपेक्षा से वह अंशी है।

प्रश्न (२४४)–पर्याय किसका अंश है ?

उत्तर—वह गुणका एक समय पर्यंतका अंश है, इसलिये द्रव्यका भी एक समय पर्यंतका अंश है।

प्रश्न (२४५)–पुद्गल परमाणु आदि पाँच अजीव (अचेतन) द्रव्य हैं वे कुछ जानते नहीं हैं, तो वे किसी के आधार बिना कैसे व्यवस्थित रह सकते हैं ?

उत्तर—वे अस्तित्वादि गुण युक्त तथा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यरूप सत् लक्षणवान् होने से उन्हें किसी के आधारकी आवश्यकता नहीं है। स्व सत्ता के आधार से उनके निरन्तर क्रमबद्ध उत्पाद–व्ययरूप व्यवस्थित पर्याय होती ही रहती है।

प्रश्न (२४६)–क्षेत्र और कालकी अपेक्षासे द्रव्य–गुण–पर्याय की तुलना करो।

उत्तर—(१) तीनों का क्षेत्र समान अर्थात् एक ही है।

(२) काल की अपेक्षासे द्रव्य–गुण त्रिकाल और पर्याय एक समय जितनी है।

प्रश्न (२४७)–द्रव्य–गुण–पर्याय—इन तीनों में से ज्ञात होने योग्य (प्रमेय) कौन–कौन हैं ?

उत्तर—तीनों ज्ञात होने योग्य (प्रमेय-ज्ञेय) हैं।

प्रश्न (२४८)—द्रव्यकी भूतकाल की पर्यायों की संख्या अधिक है या आगामी (भविष्य) काल की पर्यायों की ?

उत्तर—"द्रव्यकी पर्यायों में अतीत (भूतकालीन) पर्यायें अनंत हैं; अनागत (भविष्यकालीन) पर्यायें उनसे भी अनंत गुनी हैं और वर्तमानपर्याय एक ही है। सर्व द्रव्यों के अनंत समयरूप भूतकाल तथा उससे अनंतगुने समयरूप भविष्यकाल है।"

—(स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा २२१ मूल, तथा गाथा ३०२ का भावार्थ)

भूतकालसे भविष्यकाल एक समय अधिक है और भविष्यकाल की अपेक्षा भूतकाल एक समय न्यून है— ऐसी मा यता यथार्थ नहीं है।

प्रश्न (२४९)—छहों द्रव्यों में द्रव्य–गुण–पर्याय जानने का क्या फल ?

उत्तर—स्व-परका भेदज्ञान और पर पदार्थोंकी कर्तृत्व बुद्धिका अभाव होता है—वह जानने का फल है ?

प्रश्न (२५०)—स्कंध किसे कहते हैं ? वह किसकी कौनसी पर्याय है ?

उत्तर—दो अथवा दो से अधिक परमाणुओं के बंधको स्कंध कहते हैं; वह पुद्गल द्रव्यकी विभावअर्थपर्याय है।

प्रश्न (२५१)—बंध किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनेक वस्तुओं में एकत्वका ज्ञान करानेवाले सम्बन्ध विशेष को बंध कहते हैं।

प्रश्न (२५२)—स्कंध के कितने भेद हैं ?

उत्तर—आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्मणवर्गणा आदि २२ भेद हैं।*

---

* श्री गोमट्टसार जीवकान्ड गाथा ५९३–९४में २३ वर्गणा कही हैः—
१–अणुवर्गणा, २–संख्याताणुवर्गणा, ३–असंख्याताणुवर्गणा, ४–अनं-

प्रश्न (२५३)–आहारवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पुद्गल स्कंध औदारिक, वैक्रियिक और आहारक—इन तीन शरीरोंरूप परिणमन करता है उसे आहारवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५४)–तैजसवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस वर्गणा से तैजस शरीर बनता है उसे तैजसवर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५५)–भाषावर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो वर्गणा (पुद्गल स्कंध) शब्दरूप परिणमित होती है उसे भाषावर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५६)–मनोवर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जिस पुद्गल स्कंध से आठ पंखुड़ियों वाले कमल के आकार वाले द्रव्यमन की रचना होती है उसे मनोवर्गणा कहते हैं ?

प्रश्न (२५७)–कार्माण वर्गणा किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो पुद्गल स्कंध कार्माणशरीररूप परिणमे उसे कार्माण-वर्गणा कहते हैं।

प्रश्न (२५८)–शरीर कितने हैं ?

ताणु व०, ५–आहारवर्गणा, ६–अग्राह्यवर्गणा, ७–तैजसवर्गणा, ८–अग्राह्यवर्गणा, ९–भाषावर्गणा, १०–अग्राह्यवर्गणा, ११–मनोवर्गणा, १२–अग्राह्यवर्गणा, १३–कार्मणवर्गणा, १४–ध्रुववर्गणा, १५–सांतरनिरन्तरवर्गणा, १६–शून्यवर्गणा, १७–प्रत्येक शरीर वर्गणा, १८–ध्रुवशून्यवर्गणा, १९–बादरनिगोद वर्गणा, २०–शून्यवर्गणा, २१–सूक्ष्मनिगोद वर्गणा, २२--नभोवर्गणा, २३--महास्कंध वर्गणा।

उत्तर—शरीर पाँच हैं—१–औदारिक, २–वैक्रियिक, ३–आहारक,४ तैजस, और कार्माण।

प्रश्न (२५९)–औदारिक शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर–मनुष्य और तिर्यंचके स्थूल शरीरको औदारिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६०)–वैक्रिय शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो छोटे-बड़े, एक-अनेक आदि भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रियाएँ करें–ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६१)–आहारकशरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—आहारक ऋद्धिधारी छट्ठे गुणस्थानवर्ती मुनि को किसी-प्रकार की तत्त्वशंका होनेपर अथवा जिनालय आदि की वंदना करने के लिये मस्तकमें से एक हाथ प्रमाण स्वच्छ, श्वेत, सप्त धातुरहित पुरुषाकार जो पुतला निकलता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६२)–तैजस शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—औदारिक, वैक्रियिक और आहारक—इन तीन शरीरों में कान्ति उत्पन्न होने में जो निमित्त है उसे तैजस शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६३)–कार्माण शरीर किसे कहते हैं ?

उत्तर—ज्ञानावरणादि आठ कर्मों के समूह को कार्माण शरीर कहते हैं।

प्रश्न (२६४)–एक जीवको एक साथ कितने शरीरों का संयोग हो सकता है ?

उत्तर—(१) एकसाथ कम से कम दो और अधिक से अधिक चार शरीरों का संयोग होता है।

(२) विग्रहगति* में तैजस और कार्मारण शरीरका संयोग होता है।

(३) मनुष्य और तिर्यंचको औदारिक, तैजस और कार्मारण—तीन शरीर होते हैं; किन्तु आहारक ऋद्धिधारी मुनि को औदारिक, आहारक, तैजस और कार्मारण—ऐसे चार शरीर होते हैं।

(४) देव और नारकियों को वैक्रियिक, तैजस और कार्मारण-तीन शरीर होते हैं।

प्रश्न (२६५)–ज्ञानगुण की कौन–कौनसी पर्यायें हैं ?

उत्तर—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान और केवल-ज्ञान—यह सम्यक्ज्ञान, की पर्यायें हैं; और कुमतिज्ञान, कुश्रुत-ज्ञान तथा कुअवधिज्ञान–यह मिथ्याज्ञानकी पर्यायें हैं।—इस-प्रकार ज्ञानगुण की आठ पर्यायें हैं।

प्रश्न (२६६)–उपरोक्त आठ पर्यायोंमें स्वभावअर्थपर्याय और विभाव-अर्थपर्याय कौन हैं ?

उत्तर—(१) केवलज्ञान स्वभावअर्थपर्याय है।

(२) सम्यग्मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान—यह केवलज्ञान की अपेक्षा से विभावअर्थपर्यायें हैं और वही चार ज्ञान सम्यग्ज्ञान की पर्यायें हैं; इसलिये उन्हें एकदेश स्वभावअर्थपर्याय कहा जाता है।

(३) कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान—वे विभावअर्थ-पर्यायें हैं।

---

*"विग्रहार्था गतिर्विग्रहगतिः" एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर की प्राप्ति के लिये गमन करना वह विग्रहगति है। (विग्रह=शरीर)

प्रश्न (२६७)–मतिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—१–सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष और २–परोक्ष ।

प्रश्न (२६८)–सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर—जो इन्द्रिय और मनके निमित्तके सम्बन्ध से पदार्थ को एक देश (-भाग) स्पष्ट जाने उसे सांव्यावहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं ।

प्रश्न (२६९)–मतिज्ञान के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—१–स्मृति, २–प्रत्यभिज्ञान, ३–तर्क और ४–अनुमान ।

(१) स्मृति–भूतकाल में जाने, देखे, सुने या अनुभव किये हुए पदार्थ का वर्तमानमें स्मरण हो वह स्मृति है ।

(२) प्रत्यभिज्ञान—वर्तमान में किसी पदार्थ को देखने से–"यह वही पदार्थ है जिसे पहले मैंने देखा था,"—इसप्रकार स्मरण और प्रत्यक्ष के जोड़रूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं ।

(३) तर्क—कोई चिह्न देखकर "यहाँ इस चिह्नवाला अवश्य होना चाहिये"—ऐसा विचार वह तर्क (चिन्ता) है । इस ज्ञानको उह अथवा व्याप्तिज्ञान भी कहते हैं ।

(४) अनुमान—सन्मुख चिह्नादि देखकर उस चिह्नवाले पदार्थ का निर्णय करना उसे अनुमान (अभिनिबोध) कहते हैं ।

प्रश्न (२७०)–मतिज्ञानके क्रम के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—१. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय और ४. धारणा ।

(१) अवग्रह—इन्द्रिय और पदार्थ के योग्य स्थान में रहने से सामान्य प्रतिभासरूप दर्शनके पश्चात् अवान्तर सत्तासहित विशेष वस्तुके ज्ञानको अवग्रह कहते हैं; जैसे कि—यह मनुष्य है ।

(२) ईहा—अवग्रहज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थके विशेषमें उत्पन्न हुए संशयको दूर करनेवाले ऐसे अभिलाषस्वरूप ज्ञान को ईहा कहते हैं; जैसे कि—वे ठाकुरदासजी हैं।
यह ज्ञान इतना निर्बल है कि किसी भी पदार्थ की ईहा होकर छूट जाये तो कालान्तर में तत्सम्बन्धी संशय और विस्मरण हो जाता है।

(४) अवाय—ईहा से जाने हुए पदार्थ में यह वही है, दूसरा नहीं—ऐसे दृढ़ ज्ञानको अबाय कहते हैं; जैसे कि—वे ठाकुरदासजी ही हैं, दूसरा कोई नहीं।
अवाय से जाने हुए पदार्थ में संशय तो नहीं होता किन्तु विस्मरण हो जाता है।

(४) धारणा—जिस ज्ञानसे जाने हुए पदार्थमें कालान्तरमें संशय तथा विस्मरण न हो उसे धारणा कहते हैं।

प्रश्न (२७१)–आत्मा के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणाका क्या स्वरूप है ?

उत्तर—जीवको अनादिकाल से अपने स्वरूपकी भ्रमणा है, इसलिये प्रथम आत्मज्ञानी पुरुष से आत्माका स्वरूप सुनकर युक्ति द्वारा- आत्मा ज्ञानस्वभावी है—ऐसा निर्णय करना चाहिये.........फिर– परपदार्थकी प्रसिद्ध के कारणरूप जो इन्द्रिय तथा मनद्वारा प्रवर्तित बुद्धि उसे मर्यादा में लाकर अर्थात् परपदार्थों की ओर से अपना लक्ष हटाकर आत्मा जब स्वयं स्वसन्मुख लक्ष करता है तब प्रथम सामान्य स्थूलरूपसे आत्मा सम्बन्धी ज्ञान हुआ। वह अवग्रह, पश्चात् विचारके निर्णयकी ओर ढला वह ईहा; "आत्माका स्वरूप ऐसा ही है अन्यथा नहीं"—ऐसा स्पष्ट निर्णय

हुआ वह अवाय; और निर्णय किये हुए आत्मा के बोधको दृढ़तारूपसे धारण कर रखना सो धारणा। यहाँ तक तो परोक्ष ऐसे मतिज्ञानमें धारणा तक का अन्तिम भेद हुआ। फिर–यह आत्मा अनंत ज्ञानानन्द शांति स्वरूप है ऐसा मति में से बढ़ता हुआ तार्किक ज्ञान वह श्रुतज्ञान है। भीतर स्वलक्ष में मन–इन्द्रियाँ निमित्त नहीं है। जीव उनसे अंशतः पृथक् हो तब स्वतंत्र तत्त्वका ज्ञान करके उसमें स्थिर हो सकता है।

—(देखो मोक्षशास्त्र–अध्याय १, सूत्र १५ की टीका–प्रकाशक स्वा० मंदिर)

प्रश्न (२७२)–मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—दो भेद हैं—१–व्यक्त, और २–अव्यक्त।

प्रश्न (२७३)–अवग्रहादिक ज्ञान दोनों प्रकार के पदार्थों में हो सकते हैं ?

उत्तर—व्यक्त (-प्रगटरूप) पदार्थ में अवग्रहादिक चारों ज्ञान होते हैं, परन्तु अव्यक्त (-अप्रगटरूप) पदार्थका मात्र अवग्रह ज्ञान ही होता है।

प्रश्न (२७४)–अर्थावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—व्यक्त (प्रगट) पदार्थ के अवग्रह ज्ञानको अर्थावग्रह कहते हैं।

प्रश्न (२७५)–व्यंजनावग्रह किसे कहते हैं ?

उत्तर—अव्यक्त (अप्रगट) पदार्थके अवग्रह को व्यंजनावग्रह कहते हैं।

प्रश्न (२७६)–व्यंजनावग्रह अर्थावग्रहकी भाँति सर्व इन्द्रियों और मन द्वारा होता है या किसी अन्यप्रकार से ?

उत्तर—व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मनके अतिरिक्त अन्य सर्व इन्द्रियों से होता है।

प्रश्न (२७७)—व्यक्त और अव्यक्त पदार्थों के कितने भेद हैं ?

उत्तर—प्रत्येक के बारह–बारह भेद हैं—बहु, एक, बहुविध, एक-विध, क्षिप्र, अक्षिप्र, निःसृत, अनिःसृत, उक्त, अनुक्त, ध्रुव, अध्रुव।

प्रश्न (२७८)—चारित्र गुणकी शुद्ध पर्यायें कौन–कौन सी हैं ?

उत्तर—चार हैं—स्वरूपाचरण चारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यात चारित्र।

प्रश्न (२७९)—स्वरूपाचरण चारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर आत्मानुभवपूर्वक आत्मस्वरूपमें, अनंतानुवंधी कषायों के अभावस्वरूप जो स्थिरता होती है उसे स्वरूपाचरण चारित्र कहते हैं।

प्रश्न (२८०)—देशचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्र गुण की कुछ विशेष शुद्धि होनेपर (अनंतानुबंधी—अप्रत्याख्यानावरणीय कषायोंके अभाव पूर्वक) उत्पन्न आत्मा की शुद्धि विशेष को देशचारित्र कहते हैं।

[इस श्रावकदशामें व्रतादिरूप शुभभाव होते हैं। शुद्ध देश चारित्र से धर्म होता है और व्यवहार व्रत से बंध होता है। निश्चय चारित्र के यिना सच्चा व्यवहार चारित्र नहीं हो सकता।]

प्रश्न (२८१)—सकलचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्र गुण की शुद्धि की वृद्धि होने पर (अनंतानुबंधी आदि तीन कषायों के अभावपूर्वक) उत्पन्न

(भावलिंगी मुनिपद के योग्य) आत्मा की शुद्धि विशेषको सकलचारित्र कहते हैं।

मुनिपदमें २८ मूलगुणादिका जो शुभभाव होता है उसे व्यवहार सकलचारित्र कहते हैं।

[निश्चयचारित्र आत्माश्रित होनेसे वह मोक्षमार्ग है—धर्म है; और व्यवहारचारित्र पराश्रित होनेसे वास्तवमें बंधमार्ग है–धर्म नहीं है।]

प्रश्न (२८२)–यथाख्यातचारित्र किसे कहते हैं ?

उत्तर—निश्चय सम्यग्दर्शन सहित चारित्रगुण की पूर्ण शुद्धता होने पर; कषायों के सर्वथा अभावपूर्वक उत्पन्न आत्मा की शुद्धि विशेष को यथाख्यातचारित्र कहते हैं।

प्रश्न (२८३)–निम्नोक्त बोल किस गुणकी कौनसी पर्याय है ?— ध्वनि, प्रतिध्वनि, छाया, प्रतिबिम्ब, सूर्य का विमान, घड़ी के लट्टू का हिलना, दुःख, मोक्ष और केवलज्ञान।

उत्तर—(१) ध्वनि वह पुद्गल द्रव्य के भाषावर्गणारूप स्कंधमें से उत्पन्न हुई ध्वनिरूप पर्याय है। एक पुद्गल-परमाणु ध्वनिरूप परिणमित नहीं होता, इसलिये वह किसी मुख्य गुण की पर्याय नहीं है; किन्तु स्पर्श गुणके कारण हुए स्कंधकी विशेष प्रकार की पर्याय है और उस स्कंधका आकार वह विभाव व्यञ्जनपर्याय है।

(२) प्रतिध्वनि भी उपरोक्तानुसार भाषावर्गणा में से उत्पन्न हुई स्कंधरूप पर्यायें, और उनका आकार वह विभावव्यंजन-पर्याय है।

(३) छाया और प्रतिबिम्ब पुद्गल द्रव्यके वर्णगुणकी विभाव-अर्थपर्याय है।

(४) सूर्य विमान पुद्गल द्रव्यके अनेक स्कन्धों का अनादि-अनंत पिंड है। सूर्य में जो तेज (प्रकाश) है वह वर्ण गुणकी

विभावअर्थपर्याय है।

[सूर्यलोक में वास करनेवाले ज्योतिषी देवोंका नाम भी सूर्य है। देवगति नामकर्मके धारावाही उदयके वशवर्ती स्वभाव द्वारा वे देव हैं। —प्रवचनसार गाथा ३८ की टीका]

(५) घड़ीके लट्टू का चलना वह पुद्‌गल द्रव्यकी क्रियावती शक्तिके कारण होनेवाली गमनरूप विभावअर्थपर्याय है।

(६) दुःख वह जीव द्रव्यके सुख गुण की आकुलतारूप विभावअर्थपर्याय है।

(७) मोक्ष वह जीव द्रव्यके समस्त गुणों की स्वभावअर्थ-पर्याय और प्रदेशत्व गुणकी स्वभावव्यंजनपर्याय है।

(८) केवलज्ञान वह जीव द्रव्यके ज्ञान गुणकी परिपूर्ण स्वभावअर्थपर्याय है।

प्रश्न (२८४)–अनादि-अनंत, सादिअनंत, अनादिसांत और सादिसांत– इन्हें उदाहरण देकर समझाइये।

उत्तर—(१) अनादिअनंत—जिसका आदि और अंत न हो उसे अनादिअनंत कहते हैं। द्रव्य और गुण अनादिअनंत हैं; अभव्य जीव की संसारी पर्याय भी अनादिअनंत है।

(२) सादिअनंत–क्षायिक सम्यक्त्व, केवलज्ञानादि क्षायिक-भाव तथा मोक्षपर्याय नये प्रगट होते हैं उस अपेक्षा से वे सादि (आदि सहित) और वे पर्यायें बदलने पर भी ज्यों के त्यों अनंतकाल होते ही रहते हैं, इसलिये उन्हें अनंत कहा है।

(६) अनादिसांत—संसारपर्याय अनादिकालीन हैं; किन्तु जिस भव्य जीवके संसारदशारूप अशुद्धपर्यायका अंत आ जाता है, उसे वह अनादिसांत है।

(४) सादिसांत—सम्यग्दृष्टि को मोक्षमार्ग सम्बन्धी क्षयोपशम तथा उपशमभाव नये-नये होते हैं, इसलिये वे सादि, और उनका अंत आता है इसलिये सांत हैं।

प्रश्न (२८५)–सायंकालके बादलों में क्या बदलता दिखाई देता है?

उत्तर—उनमें वर्ण बदलता है; वह पुद्गल द्रव्यके वर्णगुण की विभावअर्थपर्याय है, और जो आकार बदलता है वह उनके प्रदेशत्व गुणकी विभावव्यञ्जनपर्याय है।

प्रश्न (२८६)–महावीर स्वामी और भगवान ऋषभदेव—दोनों की व्यञ्जन और अर्थपर्याय की तुलना करो।

उत्तर—दोनों के आकार में—ऊँचाई आदि में अन्तर होने से उनकी व्यञ्जनपर्यायमें अंतर है; लेकिन प्रदेशत्व गुणके अतिरिक्त शेष गुणों की पर्यायें समान होनेसे उनकी अर्थपर्यायें समान हैं।

प्रश्न (२८७)–दो परमाणु द्रव्यों की व्यंजन और अर्थ पर्याय की तुलना करो, तथा जीवकी सिद्ध पर्याय के साथ उनकी तुलना करो।

उत्तर—(१) दो पृथक् परमाणु पृथक् रहते हैं तबतक उनकी स्वभाव व्यंजन पर्यायें समान होती हैं।

स्वभावअर्थपर्यायें शुद्ध होने पर भी उनके स्पर्शादि गुणों के परिणमन में परस्पर अन्तर होता है।

परमाणु का बंधस्वभाव होने से उसमें पुनः स्कंध होने की योग्यता है; इसलिये अपने स्पर्श गुण के कारण वे बंधदशा को प्राप्त करते हैं।

(२) दो सिद्धात्माओं की परस्पर स्वभावव्यंजन पर्यायें एक-सी नहीं होती; किन्तु दो पृथक् परमाणुओं की व्यंजनपर्यायें एक-सी होती हैं।

जीवका मोक्षस्वभाव होने से-दो सिद्धात्माओं की स्वभाव अर्थ पर्यायें सदैव एकसमान शुद्ध परिणमित होती हैं, किन्तु दो पृथक् पुद्गल परमाणुओं में ऐसा नहीं होता।

सिद्धभगवान शुद्ध हुए सो हुए, फिर कभी भी बंधदशा को प्राप्त नहीं होते, किन्तु पुद्गलपरमाणु पुनःपुनः बंधदशा को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न (२८८)–क्या आम्रफल की व्यंजनपर्याय उसके ऊपरी भागमें होती है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वह अनंत परमाणुओं का पिण्ड है और उसके सम्पूर्ण भागमें उन-उन परमाणुओं की व्यंजनपर्यायें हैं। (प्रत्येक परमाणुद्रव्य की व्यंजनपर्याय भी भिन्न-भिन्न स्वतंत्र है।)

प्रश्न (२८९)–जिसके स्वभावव्यंजन पर्याय हो उसके विभावअर्थ-पर्याय होती है ? होती हो तो कारण बतलाइये।

उत्तर—नहीं: क्योंकि जीव द्रव्य में मोक्षदशा हुए बिना स्वभावव्यंजन पर्याय प्रगट नहीं होती, इसलिये जिसके स्वभावव्यंजनपर्याय हो उसके विभाव अर्थपर्याय नहीं हो सकती।

पुद्गलद्रव्य में भी स्वभाव व्यंजनपर्याय हो उसकाल विभाव अर्थ पर्याय (स्कंधरूपपर्याय) नहीं होती।

प्रश्न (२९०)–चार प्रकार की पर्यायों में से तीन प्रकार की पर्यायें किसके होती हैं ?

उत्तर—संसारी सम्यग्दृष्टि जीव के तीन प्रकार की पर्यायें होती हैं; क्योंकि—

(१) क्षायिक सम्यक्त्वरूप स्वभाव अर्थ पर्याय किसी को चौथे गुणस्थान से होती है; और बारहवें गुणस्थान से चारित्र गुणकी

३—"उनको (केवलीभगवानको) **समस्त द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावका अक्रमिक ग्रहण होने से** समक्ष संवेदन की (प्रत्यक्ष-ज्ञानकी) आलम्बनभूत समस्त द्रव्य-पर्यायें प्रत्यक्ष ही हैं।"

(श्री प्रवचनसार गाथा २१ की टीका)

४—जो (पर्यायें) अद्यापि उत्पन्न नहीं हुई हैं, तथा जो उत्पन्न होकर विलयको प्राप्त होगई हैं, वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी **ज्ञान के प्रति नियत होने से** (ज्ञानमें निश्चित्-स्थिर-चिपके होने से, ज्ञानमें सीधे ज्ञात होने से) ज्ञान प्रत्यक्ष वर्तते हुए, पत्थरके स्तम्भमें अंकित भूत और भविष्यकालीन देवों की (तीर्थंकर देवोंकी) भाँति अपना स्वरूप अकंपरूप से (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं।"

(—श्री प्रवचनसार गाथा ३८ की टीका)

५—"क्षायिक ज्ञान वास्तवमें (सचमुच) एक ही समय में सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशों से), तत्काल वर्तते हुए अथवा अतीत, अनागत कालमें वर्तते हुए उन समस्त पदार्थों को जानता है कि जिनमें पृथक्रूप वर्तते हुए स्वलक्षणोंरूप लक्ष्मी (द्रव्यों के भिन्न-भिन्न प्रवर्तमान ऐसे निज-मिज लक्षण वह द्रव्यों की लक्ष्मी) से आलोकित अनेक प्रकारों के कारण वैचित्र्य प्रगट हुआ है......उन्हें जानता है। क्षायिकज्ञान अवश्यमेव **सर्वदा सर्वत्र सर्वथा** सर्व को (द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप से जानता है।

(—श्री प्रवचनसार गाथा ४७ की टीका)

६—"जो एक ही साथ (-युगपत्) **त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ** (तीनों काल और तीनों लोक के) पदार्थों को नहीं जानता उसे

पर्याय सहित एक द्रव्य भी जानना शक्य नहीं है।"

[श्री प्रवचनसार गाथा ४८]

७—"......एक ज्ञायकभाव का सर्व ज्ञेयों को जानने का स्वभाव होने से, **क्रमशः प्रवर्तित अनंत भूत–वर्तमान–भावी विचित्र पर्याय समूहवाले,** अगाध स्वभाव और गम्भीर ऐसे समस्त द्रव्यमात्रको—मानों कि—वे द्रव्य ज्ञायकमें अंकित होगये हों, चित्रित होगये हों, दब गये हों, गड़ गये हों, डूब गये हों, समागये हों, प्रतिबिम्बित हुए हों इसप्रकार—**एक क्षणमें** ही जो (शुद्ध आत्मा) **प्रत्यक्ष करता है......"**

[श्री प्रवचनसार गाथा २०० की टीका]

८—"घातिकर्म का नाश होने पर अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख, अनंतवीर्य—यह अनंत चतुष्टय प्रगट होते हैं। वहाँ अनंतदर्शन–ज्ञान से तो, छह द्रव्यों से भरपूर जो यह लोक है उसमें जीव अनंतानंत और पुद्गल उनसे भी अनंतगुने हैं; और धर्म, अधर्म तथा आकाश यह तीन द्रव्य एवं असंख्य कालद्रव्य हैं—उन सर्व द्रव्योंकी भूत–भविष्य–वर्तमानकाल सम्बन्धी अनंत पर्यायोंको भिन्न-भिन्न एक समयमें देखते और जानते हैं।

[अष्टपाहुड़–भावपाहुड़ गाथा १५० की पं० जयचन्द्रजी कृत टीका]

९—श्री पंचास्तिकाय की श्री जयसेनाचार्य कृत संस्कृत टीका, पृष्ठ ८७, गाथा ५ में कहा है कि—

....णाणाणाणं च णत्थि केवलिणो—गाथा ५।

केवलीभगवान को ज्ञानाज्ञान नहीं होता, अर्थात् उन्हें किसी विषयमें ज्ञान और किसी में अज्ञान वर्तता है—ऐसा नहीं होता, **किन्तु सर्वत्र ज्ञान ही वर्तता है।**

१०—"केवलीभगवान त्रिकालावच्छिन्न लोक-अलोक सम्बन्धी सम्पूर्ण गुण–पर्यायों से समन्वित अनंत द्रव्यों को जानते हैं। **ऐसा कोई ज्ञेय नहीं हो सकता जो केवलीभगवान के ज्ञान का विषय न हो**.............जब मति और श्रुतज्ञान द्वारा भी यह जीव वर्तमान के उपरान्त भूत तथा भविष्यत् काल की बातों का परिज्ञान करता है, तो केवली भगवान अतीत (भूतकालके), अनागत (भविष्यकालके), और वर्तमानकाल के समस्त पदार्थों का ग्रहण करें वह युक्तियुक्त ही है।.............. **यदि केवली भगवान अनंतानंत पदार्थों को क्रमपूर्वक जानते तो सम्पूर्ण पदार्थों का साक्षात्कार नहीं होता।** अनंतकाल व्यतीत होने पर भी पदार्थों की अनंत गणना अनंत ही रहती है। आत्मा की असाधारण निर्मलता होने के कारण एक समय में ही सकल पदार्थों का ग्रहण (ज्ञान) होता है।

"जब ज्ञान एकसमय में सम्पूर्ण जगत या विश्वके तत्त्वों का बोध (ज्ञान) कर चुकेगा तब वह कार्य हीन हो जायेगा" ऐसी आशंका भी युक्त नही है! क्योंकि कालद्रव्य के निमित्त से तथा अगुरुलघु गुण के कारण समस्त वस्तुओं में प्रतिक्षण परिणमन–परिवर्तन होता है। जो कल भविष्यत् था वह आज वर्तमान बनकर फिर अतीतका रूप धारण करता है। इसप्रकार परिवर्तनका चक्र सदैव चलते रहने के कारण ज्ञेय के परिणमन अनुसार ज्ञानमें भी परिणमन होता है। **जगत के जितने पदार्थ हैं उतनी ही केवलज्ञान की शक्ति या मर्यादा नहीं है। केवलज्ञान अनंत है। यदि लोक अनन्तगुना भी होता तो वह केवलज्ञान सिन्धुमें बिन्दु तुल्य समा जाता**...........अनन्त केवलज्ञान द्वारा अनंत जीव तथा अनंत

आकाशादि का ग्रहण होने पर भी वे पदार्थ सान्त नहीं होते। अनंत-ज्ञान अनन्त पदार्थ या पदार्थों को अनन्तरूप से बतलाता है; इस कारण ज्ञेय और ज्ञान की अनन्तता अबाधित रहती है।"

[महाबंध—महाधवला सिद्धान्त शास्त्र, प्रथम भाग प्रकृति-बन्धाधिकार पृष्ठ २७, हिन्दी अनुवाद पर से। धवला पुस्तक १३, पृष्ठ ३४६ से ३५३]

उपरोक्त आधारों से निम्नोक्त मंतव्य मिथ्या सिद्ध होते हैं:—

(१) केवलीभगवान भूत और वर्तमान कालवर्ती पर्यायों को ही जानते हैं और भविष्यत् पर्यायों को वे हों तब जानते हैं।

(२) सर्वज्ञ भगवान अपेक्षित धर्मों को नहीं जानते।

(३) केवलीभगवान भूत-भविष्यत् पर्यायों को सामान्यरूपसे जानते हैं किन्तु विशेषरूपसे नहीं जानते।

(४) केवली भगवान भविष्यत् पर्यायों को समग्ररूपसे जानते हैं, भिन्न-भिन्नरूपसे नहीं जानते।

(५) ज्ञान सिर्फ ज्ञानको ही जानता है।

(६) सर्वज्ञके ज्ञानमें पदार्थ झलकते हैं, किन्तु भूतकाल तथा भविष्यकालकी पर्यायें स्पष्टरूप से नहीं झलकतीं।—इत्यादि मन्तव्य सर्वज्ञको अल्पज्ञ मानने समान हैं।

प्रश्न (२९५)—शब्द क्या है? क्या वह आकाशका गुण है?

उत्तर—शब्द पुद्‌गल द्रव्यकी स्कंधरूप पर्याय है, वह आकाशका गुण नहीं है, क्योंकि आकाश तो सदैव अमूर्तिक है, और शब्द मूर्तिक है, वह कानों से टकराता है; उसकी आवाजरूप—ध्वनिरूप गर्जना होती है।—इसप्रकार शब्द इन्द्रिय द्वारा ज्ञात होता है इसलिये वह पुद्‌गल है।

स्वभाव अर्थपर्याय होती है; तेरहवें गुणस्थान से ज्ञानादि की पूर्ण शुद्ध अर्थ पर्यायें होती हैं।

(२) योगगुण की स्वभाव अर्थ पर्याय तेरहवें गुणस्थान के अन्त में प्रगट होती है।

(३) १४ वें गुणस्थान तक प्रदेशत्व गुणकी विभावव्यञ्जनपर्याय होती है, और—

(४) शेष जिन-जिन गुणों का अशुद्ध परिणमन है उनकी विभाव अर्थपर्यायें १४ वें गुणस्थान तक होती हैं।

(-आत्मावलोकन, पृष्ठ १००–१०१)

प्रश्न (२९१)–अरिहंत भगवान के विभावव्यञ्जन पर्याय होती है ?

उत्तर–हाँ; क्योंकि उनके भी प्रदेशत्वगुण का अशुभ परिणमन है, और वह १४वें गुणस्थान के अंत तक होता है।

प्रश्न (२९२)–अरिहंतभगवान, सिद्धभगवान और अव्रती सम्यग्दृष्टि–इन तीनों का सम्यग्दर्शन समान है या कुछ अंतर होता है ?

उत्तर—नहीं; समान है। "जिसप्रकार छद्मस्थ को श्रुतज्ञान अनुसार प्रतीति होती है उसीप्रकार केवली और सिद्ध भगवानको केवलज्ञान अनुसार ही प्रतीति होती है। जिन साततत्त्वोंका स्वरूप पहले निर्णीत किया था, वही अब केवलज्ञान द्वारा जाना इसलिये वहाँ प्रतीतिमें परम अवगाढ़ता हुई, इसीलिये वहाँ परमावगाढ़ सम्यक्त्व कहा है; किन्तु पूर्वकाल में श्रद्धान किया था उसे यदि असत्य माना होता तो वहाँ अप्रतीति होती; किन्तु जैसा सात तत्त्वोंका श्रद्धान छद्मस्थ को हुआ था वैसा ही केवली-सिद्ध भगवान को भी होता है, इसलिये ज्ञानादिक की हीनता–अधिकता होने पर भी तिर्यंचादिक और केवली सिद्धभगवान को

सम्यक्त्वगुण तो समान ही कहा है।"

(मोक्षमार्ग प्रकाशक–अधिकार ९ वाँ पृष्ठ ४७५)

प्रश्न (२९३)–भगवानकी दिव्यध्वनि क्या है ?

उत्तर—दिव्यध्वनि पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है। तेरहवें गुणस्थानवर्ती श्रीअरिहंतदेवकी जो उपदेशात्मक भाषा निकलती है उसे दिव्यध्वनि कहते हैं। भगवानका आत्मद्रव्य अखंड वीतरागभावरूप व अखण्ड केवलज्ञानरूप परिणमित होगया है, इसलिये योग के निमित्त से जो दिव्यध्वनि खिरती है वह भी अखण्ड अर्थात् निरक्षर (अनक्षर) स्वरूप होती है।

भगवान की दिव्यध्वनि देव, मनुष्य, तिर्यंच-सभी जीव अपनी अपनी भाषा में अपने ज्ञानकी योग्यतानुसार समझते हैं। उस निरक्षर ध्वनिको ॐकारध्वनि भी कहते हैं। **जबतक वह ध्वनि श्रोताओं के कर्ण प्रदेश तक न पहुँचे तबतक वह अनक्षर ही है, और** जब वह श्रोताओं के कर्णों में प्राप्त हो जाती है तब अक्षर रूप होती है।

(–देखो, गोम्मटसार जीवकांड गा. २२७ की टीका)

भगवान की दिव्यध्वनि संबंधी विशेष आधारों के लिये देखिये:—

१—जिनकी धुनि है ॐकाररूप, निरक्षरमय महिमा अनूप।

(पं० द्यानतरायकृत जयमाला)

२—सर्वार्थसिद्धि टीका (अध्याय ५, सूत्र २४ की टीका)

३—तत्त्वार्थ राजवार्तिक टीका " " "

४—श्लोकवार्तिक टीका " " "

५—अर्थ प्रकाशिका (अध्याय ५, सूत्र २४ की टीका)
६—श्रुतसागरी टीका " " "
७—तत्त्वार्थसूत्र पाँचवाँ अध्याय (अंग्रेजी टीका) इन्दौर से प्रकाशित ।
८—तत्त्वार्थसार, अजीव अधिकार सूत्र २२ ।
९—नियमसार गाथा १०८ की टीका ।
१०—चर्चा समाधान पृष्ठ २६–२७ ।
११—वृहद् द्रव्य संग्रह गा० १६ की टीका ।
१२—समवशरण पाठ ब्रह्म० भगवानसागरजी कृत पृ० १७४ ।
१३—पंचास्तिकाय पृष्ठ ४ तथा १३५ (जयसेनाचार्य की टीका)
१४—बनारसी विलास—ज्ञान बावनी ।
१५—विद्वज्जन बोधक भाग १, पृष्ठ १५६ से १५९ तथा उसमें लिखित आधार)
१६—बिहारीदासजी कृत जिनेन्द्र स्तुतिः—
"इच्छा बिना भविभाग्य तैं, तुम ध्वनि सु होय निरक्षरी ।"
१७—"एकरूप निरक्षर उपजत, उचरत नेक प्रसंग ।"
(–प्राचीन कवि)

प्रश्न (२९४)–सर्वज्ञ भगवानके केवलज्ञान का क्या विषय है ?

उत्तर—१–सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य । (मोक्षशास्त्र अ० १, सूत्र २९)

अर्थ—केवलज्ञान का विषय सर्व द्रव्य (गुणों सहित) और उनकी सर्व पर्यायें हैं—अर्थात् केवलज्ञान एक साथ सर्व पदार्थों को और उनके सर्व गुणों तथा पर्यायों को जानता है ।

२–श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत प्रवचनसार गाथा ३७ में कहा है:—

तक्कालिगेव सव्वे सदसब्भूदा हि पज्जया तासिं।
वट्टते ते णाणे विसेसदो दव्वजादीणं ॥ ३७ ॥

अर्थ—"उन (जीवादि) द्रव्य जातियों की समस्त विद्यमान और अविद्यमान पर्यायें तात्कालिक (वर्तमान) पर्यायों की भांति विशिष्टता पूर्वक (अपने-अपने भिन्न-भिन्न स्वरूप से) ज्ञान में वर्तती हैं।"

इस श्लोक की श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत संस्कृत टीका में कहा है कि:—

"(जीवादि) समस्त द्रव्य जातियोंकी पर्यायों की उत्पत्ति की मर्यादा तीनों कालकी मर्यादा जितनी होनेसे (अर्थात् वे तीनों काल में उत्पन्न हुआ करती हैं इसलिये), उनकी (उन समस्त द्रव्य जातियों की), क्रमपूर्वक तपती हुई स्वरूप सम्पदावान, (एकके बाद एक प्रगट होनेवाली), विद्यमानपने और अविद्यमानपने को प्राप्त होनेवाली (भूतकाल तथा भविष्यकाल की) जो जितनी पर्यायें हैं, वे सभी तात्कालिक (वर्तमान कालीन) पर्यायों की भांति, अत्यन्त मिश्रित होनेपर भी, सर्व पर्यायोंके विशिष्ट लक्षण स्पष्ट ज्ञात हो इसप्रकार, एक क्षणमें ही ज्ञान महल में स्थिति को प्राप्त होती हैं।

इस गाथा की संस्कृत टीका में श्री जयसेनाचार्य ने कहा है है कि—

"......ज्ञानमें सर्व द्रव्यों की तीनों कालकी पर्यायें एक साथ ज्ञात होने पर भी प्रत्येक पर्यायका विशिष्ट स्वरूपप्रदेश, काल, आकारादि विशेषताएँ स्पष्ट ज्ञात होती हैं; संकर—व्यतिकर नहीं होते.."

जगत में भाषावर्गणा नामके पुद्गलों की जाति भरी पड़ी हैं; वे अपने कालमें, अपने कारण स्वयं शब्दरूप परिणमित होते हैं। जिस समय वे पुद्गल शब्दरूप परिणमित होते हैं, उस समय कोई न कोई जीव या अन्यपदार्थ निमित्त होता है, किन्तु वास्तव में भाषावर्गणा जीवके कारण परिणमित नहीं होती। जब भाषावर्गणा शब्दरूप परिणमित होती है उससमय जीवकी इच्छा अथवा योग हो तो वह निमित्तमात्र है।

प्रश्न (२९६)—शब्दको आकाश का गुण माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

उत्तर—शब्द मूर्तिक पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है और आकाश अमूर्तिक द्रव्य है, इसलिए वह अमूर्त द्रव्यका गुण नहीं है; क्योंकि:—

"…..गुण-गुणी को अभिन्न प्रदेशपना होनेके कारण वे (गुण-गुणी) एक वेदन द्वारा वेद्य होनेसे अमूर्त द्रव्यको भी श्रवणेन्द्रिय के विषयभूतपना आजायेगा।"

(—प्रवचनसार गाथा १३२ की टीका)

"नैयायिक शब्दको आकाश का गुण मानते हैं, किन्तु वह मान्यता अप्रमाण है। गुण-गुणी के प्रदेश अभिन्न होते हैं, इसलिये जिस इन्द्रिय से गुण ज्ञात हो उसी इंद्रिय से गुणी भी ज्ञात होना चाहिये। शब्द कर्णेन्द्रिय से ज्ञात होते हैं, इसलिये आकाश भी कर्णेन्द्रिय द्वारा ज्ञात होना चाहिये; लेकिन आकाश तो किसी इन्द्रिय द्वारा ज्ञात नहीं होता, इसलिये शब्द आकाशादि अमूर्तिक द्रव्यों का गुण नहीं है।"

(श्री प्रवचनसार गाथा १३२ का फुट नोट)

प्रश्न (२६७)—जीभ द्वारा शब्द (वाणी) बोले जाते हैं ? क्या वे जीवकी इच्छा से बोले जाते हैं ?

उत्तर—(१) नहीं; क्योंकि जीभ आहार वर्गणामें से बनती है और शब्द (वाणी) की रचना भाषावर्गणामें से होती है। आहार वर्गणा और भाषावर्गणा के बीच अन्योन्याभाव है; इसलिये जीभ द्वारा वाणी नहीं बोली जाती।

(२) नहीं; क्योंकि जीव और वाणी के बीच अत्यन्ताभाव है। इच्छाके बिना भी केवलज्ञानी की वाणी खिरती है; सशक्त मनुष्य जिस समय बोलने की इच्छा करे उसी समय कभी-कभी भाषा नहीं बोल सकता; जिसे लकवा हो अथवा जो तोतला हो वह मनुष्य व्यवस्थितरूपसे बोलने की बहुत इच्छा करता है फिर भी व्यवस्थित भाषा नहीं निकलती। जब पुद्गल की भाषारूप परिणमित होनेकी योग्यता हो तभी भाषा निकलती है और तभी इच्छादि निमित्तभूत होते हैं।

प्रश्न (२६८)—तीर्थंकर भगवान को इच्छा नहीं है, फिर भी योग के कारण वाणी खिरती है वह सच है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि वहाँ भी पुद्गल की शक्ति की योग्यता से वाणी रूप पर्याय उसके अपने कालमें ही होती है। वाणी हो तब योग तो निमित्तमात्र है।

जीवके योग गुण की पर्याय और पुद्गल की शक्ति में अत्यंत अभाव है। यदि योग से वाणी होती हो तो तेरहवें गुणस्थान में उनके निरंतर योग गुणका कम्पन है, इसलिये निरंतर वाणी होना चाहिये, किन्तु ऐसा तो होता नहीं है।

और मूककेवली योगसहित हैं; तथापि उनके वाणी नहीं होती; इसलिये वाणी जीवके योगके आधीन नहीं है तथा इच्छाके भी आधीन नहीं है; परन्तु वह स्वतंत्ररूपसे उसके अपने कालमें, अपने कारण अपनी योग्यतानुसार परिणमित होती है।

प्रश्न (२९९)–कर्म बंधके कारण कौनसे हैं ?

उत्तर—मिथ्यादर्शनाऽविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः।

(मोक्षशास्त्र अ० ८, सूत्र १)

अर्थ—मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग—यह पाँच कर्मबंधके कारण हैं।

प्रश्न (३००)–मिथ्यादर्शन (मिथ्यात्व) किसे कहते हैं ?

उत्तर—प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों के विपरीत श्रद्धानको तथा अदेव (कुदेव) को देव मानना, अतत्त्वको तत्त्व मानना, अधर्म (कुधर्म) को धर्म मानना, इत्यादि विपरीत श्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। (वह श्रद्धा गुणकी विपरीत पर्याय है।)

प्रश्न (३०१)–मिथ्यादर्शन के कितने प्रकार हैं ?

उत्तर—दो प्रकार हैं—१–अगृहीत मिथ्यात्व और २–गृहीतमिथ्यात्व।

१—अगृहीत मिथ्यात्व—

जीव परद्रव्यका कुछ कर सकता है या शुभ विकल्पसे आत्माको लाभ होता है—ऐसी अनादिकालीन मान्यता मिथ्यात्व है, और वह किसी के सिखाने से नहीं हुआ है इसलिये अगृहीत है।

२—गृहीत मिथ्यात्व—

जन्म होने के पश्चात् परोपदेशके निमित्त से जीव जो अतत्त्वश्रद्धा ग्रहण करता है उसे गृहीतमिथ्यात्व कहते हैं। [अगृ-

हीत मिथ्यात्व को निसर्गज मिथ्यात्व और गृहीत मिथ्यात्व को बाह्य प्राप्त मिथ्यात्व भी कहते हैं। जिसे गृहीत मिथ्यात्व हो उसे अगृहीत मिथ्यात्व तो होगा ही।]

प्रश्न (३०२)–गृहीत मिथ्यात्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर—पाँच भेद हैं—१–एकान्त मिथ्यात्व, २–विपरीत मिथ्यात्व, ३–संशय मिथ्यात्व, ४–अज्ञान मिथ्यात्व और ५–विनय मिथ्यात्व।

१—एकान्त मिथ्यात्व

आत्मा, परमाणु आदि पदार्थों का स्वरूप अनेकान्तमय (अनेक धर्मोंवाला) होने पर भी उन्हें सर्वथा एक ही धर्मवाला मानना वह एकान्त मिथ्यात्व है; जैसे कि—आत्माको सर्वथा क्षणिक अथवा सर्वथा नित्य ही मानना; गुण–गुणीका सर्वथा भेद या अभेद मानना आदि।

२—विपरीत मिथ्यात्व

आत्माके स्वरूपको अन्यथा मानने की रुचिको विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं; जैसे कि—

१–शरीरको आत्मा मानना;

२–वस्त्र–पात्रादि सहित को (सग्रंथको) निर्ग्रन्थ गुरु मानना।

३–स्त्रीका शरीर होनेपर भी उसे मुनिदशा और मोक्ष मानना।

४–केवलीभगवान को ग्रासाहार (कवलाहार), रोग, उपसर्ग, वस्त्र, पात्र, पाटादि सहित तथा क्रमिक उपयोग मानना।

५–पुण्यसे अर्थात् शुभराग से तथा निमित्तसे धर्म मानना आदि।

३–संशय-मिथ्यात्व—

"धर्म का स्वरूप ऐसा है अथवा वैसा है ?"—इसप्रकार परस्पर

विरुद्ध दोनों रूप श्रद्धान को संशय मिथ्यात्व कहते हैं; जैसे कि—आत्मा अपने कार्य का कर्ता होता होगा या परवस्तुके कार्यका कर्ता होता होगा ? निमित्त और व्यवहार के अवलंबनसे धर्म होगा या अपने शुद्धात्माके आलंबनसे ?—इत्यादि प्रकार का संशय रहना।

४—अज्ञान-मिथ्यात्व—

जहाँ हित-अहित का कोई विवेक न हो, अथवा किसी प्रकारको परीक्षा किये बिना धर्म की श्रद्धा करना वह अज्ञान मिथ्यात्व है; जैसे कि—पशु–वध या पाप में धर्म मानना।

५—विनय-मिथ्यात्व—

समस्त देवों और समस्त धर्ममतोंको समान मानना वह विनय मिथ्यात्व है।

[सर्वप्रकारके बंधका मूल कारण मिथ्यात्व है। सर्वप्रथम वह दूर हुए बिना अविरति आदि बंधके कारण भी दूर नहीं होते, इसलिये सर्वप्रथम मिथ्यात्व (गृहीत और अगृहीत) को दूर करना चाहिये]

प्रश्न (३०३)—अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर—१—(चारित्र के विषयमें) निर्विकार स्वसंवेदन से विपरीत अव्रत परिणामरूप विकारको अविरति कहते हैं।

२—षट्कायके जीवोंकी (पांच स्थावर जीव और एक त्रस जीव की) हिंसाके त्यागरूप भाव न करना तथा पाँच इन्द्रियाँ और मनके विषयों में प्रवृत्ति करना—ऐसे बारह प्रकार की अविरति है।

प्रश्न (३०४)—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर—अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरणीय और प्रत्याख्यानावरणीय (क्रोध, मान, माया, लोभ) के उदयमें युक्त होनेसे तथा संज्वलन और नो कषायके तीव्र उदय में युक्त होनेसे निरतिचार चारित्र के पालन में निरुत्साह तथा स्वरूप की असावधानी को प्रमाद कहते हैं।

प्रश्न (३०५)–प्रमादके कितने भेद हैं ?

उत्तर—पन्द्रह भेद हैं—४ विकथा (स्त्री कथा, राष्ट्रकथा, भोजनकथा और राजकथा), ४ कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ), ५ इन्द्रियोंके विषय, १ निद्रा और १ प्रणय (–स्नेह)।

प्रश्न (३०६)–कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर—मिथ्यात्व तथा क्रोध, मान, माया, लोभरूप आत्मा की अशुद्ध परिणति को कषाय कहते हैं।

कषाय के २५ प्रकार हैं—४ अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ, ४ अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि, ४ प्रत्याख्यानावरणीय क्रोधादि, संज्वलन क्रोधादि इसप्रकार १६ कषाय और ९ नो कषाय—(हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद रूप आत्मा की अशुद्ध परिणतिको नो कषाय कहते हैं।)

[प्रमाद और कषाय में सामान्य विशेष का अन्तर है।]

प्रश्न (३०७)–योग किसे कहते हैं ?

उत्तर—मन, वचन, काय के आलम्बन से आत्माके प्रदेशों का परिस्पंदन होना—उसे योग कहते हैं।

[योग गुणकी अशुद्ध पर्याय में कम्पनपनेको द्रव्ययोग, और कर्म–नोकर्म के ग्रहणमें निमित्तरूप योग्यताको भावयोग कहते हैं।]

योग के पन्द्रह भेद हैं—

४ मनोयोग (सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, उभय मनोयोग और अनुभय मनोयोग), ७ काययोग (औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र और कार्माण), ४ वचनयोग (सत्य वचनयोग, असत्य वचनयोग, उभय वचनयोग और अनुभय वचनयोग)

चतुष्टय

प्रश्न (३०८)–स्वचतुष्टय और परचतुष्टय का क्या अर्थ ?

उत्तर—स्वचतुष्टय अर्थात् अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव; परचतुष्टय अर्थात् अपने से भिन्न ऐसे पर पदार्थों के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव।

प्रश्न (३०९)–आत्मा के स्वचतुष्टय समझाइये।

उत्तर—(१) स्वद्रव्य—अपने ज्ञानादि गुणों और पर्यायों से अभिन्न वह स्वद्रव्य।

(२) स्वक्षेत्र—लोकप्रमाण अपने असंख्य प्रदेश हैं वह आत्मा का स्वक्षेत्र।

(३) स्वकाल—नित्य स्वभावको छोड़े विना निरन्तर क्रमबद्ध अपने–अपने अवसरमें नई–नई पर्यायोंका जो उत्पाद होता रहता है उस निज परिणामका नाम स्वकाल।

(४) स्वभाव—द्रव्यके आश्रयमें रहनेवाले त्रिकाली शक्तिरूप जो अनंतगुण हैं वह स्वभाव।

प्रश्न (३१०)–पुद्गल परमाणु के स्वचतुष्टय समझाओ।

उत्तर—(१) द्रव्य—अपने स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अस्तित्व आदि

अनंत गुणों तथा अपनी सर्व पर्यायोंरूप अखंड वस्तु–वह पुद्गल का स्वद्रव्य है।

(२) क्षेत्र—पुद्गल परमाणु का एक प्रदेश वह उसका स्व-क्षेत्र है।

(३) काल—नित्य स्वभावको न छोड़कर निरन्तर क्रमबद्ध अपने-अपने अवसरमें नई–नई पर्यायों का जो उत्पाद होता रहता है—उस पुद्गलके निज परिणामका नाम स्वकाल है।

(४) भाव—पुद्गल द्रव्यके आश्रयमें रहनेवाले जो स्पर्शादि अनंत गुण हैं वह उसका स्वभाव है।

प्रश्न (३११)–क्षेत्र की अपेक्षा से द्रव्य–गुण–पर्याय की तुलना करो।

उत्तर—तीनों का क्षेत्र समान अर्थात् एक है।

प्रश्न (३१२)–काल की अपेक्षासे द्रव्य–गुण–पर्याय की तुलना करो।

उत्तर—द्रव्य और गुण त्रिकाल तथा पर्याय एकसमय पर्यंत की।

प्रश्न (३१३)–द्रव्य और पर्यायमें भेद–अभेद समझाओ।

उत्तर—संख्या से द्रव्य एक और उसकी पर्यायें अनंत; कालसे द्रव्य त्रिकाल और पर्याय एकसमय की; भाव से भेद; क्योंकि द्रव्य और पर्यायका स्वरूप भिन्न–भिन्न है। क्षेत्र दोनों का समान।



प्रकरण चौथा

"अभाव" अधिकार

प्रश्न (३१४)–अभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक पदार्थ का दूसरे पदार्थमें अस्तित्व न होने को अभाव कहते हैं।

प्रश्न (३१५)–अभाव के कितने भेद हैं ?

उत्तर—चार भेद हैं—१–प्रागभाव, २–प्रध्वंसाभाव, ३–अन्योन्याभाव, ४–अत्यंताभाव।

प्रश्न (३१६)–प्रागभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव–उसे प्रागभाव कहते हैं।

प्रश्न (३१७)–प्रध्वंसाभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका उसी द्रव्यकी आगामी (भविष्यकी) पर्यायमें अभाव–उसे प्रध्वंसाभाव कहते हैं।

[प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव–दोनों एक ही द्रव्यकी पर्यायों को लागू होते हैं।]

प्रश्न (३१८)–श्रुतज्ञान (वर्तमान में) है; उसमें प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव बतलाओ।

उत्तर—श्रुतज्ञानका मतिज्ञानमें प्रागभाव है और श्रुतज्ञानका केवलज्ञानमें प्रध्वंसाभाव है।

प्रश्न (३१९)–दही को वर्तमान पर्यायरूपमें लेकर उसका प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव समझाओ।

उत्तर—दही की पूर्व पर्याय दूध थी, उसमें दही का अभाव था, इसलिये उसका प्रागभाव है; और मट्ठा दही की भविष्यकी पर्याय है; उसमें दही का अभाव है, इसलिये उसका प्रध्वंसाभाव है।

प्रश्न (३२०)–अन्योन्याभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्याय का दूसरे पुद्गलद्रव्य की वर्तमान पर्यायमें जो अभाव उसे अन्योन्याभाव कहते हैं।

प्रश्न (३२१)–दूध, दही और मट्ठा–यह तीन वर्तमान वस्तुएँ हैं; उनमें कितने और कौन–कौनसे अभाव हैं ?

उत्तर—तीनों पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायें हैं, इसलिये उनमें एक ही अन्योन्याभाव है।

प्रश्न (३२२)–छप्पर को दीवार का आधार है और नलियों को छप्परका आधार है—यह बराबर है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि उनमें अन्योन्याभाव है। प्रत्येक की भिन्न-भिन्न सत्ता होने के कारण सभी अपने–अपने क्षेत्र के आधार से हैं; एक परमाणुकी पर्याय अन्य किसी द्रव्य पर आधारित नहीं है।

प्रश्न (३२३)–तैजस और कार्माण शरीर के बीच कौन-सा अभाव है ?

उत्तर—अन्योयाभाव; क्योंकि दोनों पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायें हैं।

प्रश्न (३२४)–अत्यंताभाव किसे कहते हैं ?

उत्तर—एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमें (त्रिकाल) अभाव हो उसे अत्यंताभाव कहते हैं।

प्रश्न (३२५)–कुम्हार और घड़े में, तथा पुस्तक और जीवमें कौन-सा अभाव है ?

उत्तर—(१) कुम्हार (जीव) और घड़े के बीच अत्यंताभाव;

(२) पुस्तक और जीवके बीच अत्यंताभाव; क्योंकि—प्रत्येक में दोनों भिन्न–भिन्न जाति के द्रव्य हैं ।

प्रश्न (३२६)–जीवने सिद्ध–परमात्मदशा प्रगट की उसमें प्रागभाव बतलाओ ।

उत्तर—सिद्धदशा का संसारदशामें अभाव वह प्रागभाव है ।

प्रश्न (३२७)–चार अभावों में द्रव्य सूचक और पर्याय सूचक अभाव कौन-से हैं ?

उत्तर—अत्यंताभाव द्रव्य सूचक है और शेष तीन—प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव और अन्योन्याभाव—पर्याय सूचक हैं ।

प्रश्न (३२८)–चारों अभाव किस द्रव्य में लागू होते हैं ?

उत्तर—पुद्गल द्रव्य में ।

प्रश्न (३२९)–प्रागभाव और प्रध्वंसाभाव कितने द्रव्योंमें लागू होता है ?

उत्तर—छहों द्रव्यों की अपनी–अपनी पर्यायों में ।

प्रश्न (३३०)–अन्योन्याभाव कितने द्रव्योंमें लागू होता है ?

उत्तर—परस्पर पुद्गल द्रव्यों की वर्तमान पर्यायमें ही ।

प्रश्न (३३१)–अत्यंताभाव कितने द्रव्यों में लागू होता है ?

उत्तर—छहों द्रव्यों में ।

प्रश्न (३३२)–इन चार अभावों को न माना जाये तो क्या दोष आयेगा ?

(१) प्रागभाव न मानने से कार्य अनादि सिद्ध होगा ।

(२) प्रध्वंसाभाव न मानें तो कार्य अनंतकाल रहेगा ।

(३) अन्योन्याभाव न मानने से एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका दूसरे पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्याय में अभाव है वह नहीं रहेगा ।

(४) अत्यंताभाव न मानने से प्रत्येक पदार्थकी भिन्नता नहीं रहेगी। जगतके सर्व द्रव्य एकरूप हो जायेंगे।

प्रश्न (३३३)–इन चार प्रकार के अभावों को समझने से धर्म सम्बन्धी क्या लाभ होगा ?

उत्तर—(१) प्रागभाव से ऐसा समझना चाहिये कि—अनादिकाल से यह जीव अज्ञान–मिथ्यात्व और रागादि दोष नये–नये करता आरहा है; उसने धर्म कभी नहीं किया, तथापि वर्तमान में नये पुरुषार्थ से धर्म कर सकता है; क्योंकि वर्तमान पर्यायका पूर्व पर्यायमें अभाव वर्तता है।

(२) प्रध्वंसाभाव से ऐसा समझता चाहिये कि—वर्तमान अवस्थामें धर्म नहीं किया है, फिर भी जीव नवीन पुरुषार्थसे अधमंदशाका तुरन्त ही व्यय (अभाव) करके अपने में सत्यधर्म प्रगट कर सकता है।

(३) अन्योन्याभावसे ऐसा समझना चाहिये कि—एक पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्याय दूसरे पुद्गल द्रव्यकी वर्तमान पर्यायका (परस्पर अभाव के कारण) कुछ नहीं कर सकती; अर्थात् एक–दूसरे का असर, सहाय, मदद, प्रभाव, प्रेरणादि कुछ नहीं कर सकते। जब सजाति में भी परका कुछ नहीं कर सकते, तो वे (पुद्गल) जीवका क्या कर सकेंगे ?

(४) अत्यंताभाव से ऐसा समझना चाहिये कि—प्रत्येक द्रव्य में दूसरे द्रव्यका त्रिकाल अभाव है, इसलिये एक द्रव्य अन्य द्रव्यकी पर्यायका कुछ नहीं कर सकता, अर्थात् मदद, सहायता, असर, प्रभाव, प्रेरणादि कुछ नहीं कर सकते।

शास्त्रोंमें अन्य का करने–कराने आदि का जो भी कथन है

वह "घी के घड़े" की भाँति मात्र व्यवहारका ज्ञान कराता है। वह सत्यार्थ स्वरूप नहीं है—ऐसा समझना चाहिये।

प्रश्न (३३४)—"ज्ञानक्रियाभ्याम्मोक्षः"—इस सूत्रका अर्थ—"आत्माका ज्ञान और शरीरकी क्रिया—इन दोनोंसे मोक्ष होता है"—ऐसा जो कहे वह किस अभावको नहीं मानता ?

उत्तर—अत्यंताभाव को; क्योंकि परस्पर अत्यन्ताभावके कारण कोई आत्मा शरीरकी क्रिया नहीं कर सकता; मात्र परपदार्थ सम्बन्धी अहंकार वाली मान्यता करता है। शरीर की क्रिया से आत्मा को लाभ होता है—ऐसी मान्यतावाले को जीव—अजीव तत्त्वका अज्ञान वर्तता है।

प्रश्न (३३५)—निम्नोक्त जोड़ों में कौन—सा अभाव है ?

(१) इच्छा और भाषा, (२) चश्मा और ज्ञान, (३) शरीर और वस्त्र, (४) शरीर और जीव।

उत्तर—(१) इच्छा और भाषा के बीच अत्यन्ताभाव है, क्योंकि इच्छा जीवके चारित्र गुणकी विकारी पर्याय है, और भाषा-पुद्गल की भाषावर्गणा की पर्याय है।

(२) चश्मा और ज्ञान के बीच अत्यंताभाव है; क्योंकि चश्मा पुद्गल स्कंध है और ज्ञान जीव के ज्ञानगुणकी पर्याय है।

(३) शरीर और वस्त्र के बीच अन्योन्याभाव है; क्योंकि शरीर पुद्गलपिण्ड है और वस्त्र भी पुद्गल स्कंध है।

(४) शरीर और जीव के बीच अत्यन्ताभाव है, क्योंकि दोनों भिन्न द्रव्य हैं।

प्रश्न (३३६)—कुम्हारने चाक और दंड द्वारा घड़ा बनाया—ऐसा निश्चय से मानने वाले ने किस अभाव की भूल की ? और उसमें

क्या दोष हुआ ?

उत्तर—घड़ेका चाक और दंड में अन्योन्याभाव है, तथा कुम्हार और घड़े के बीच अत्यन्ताभाव है। वह इन दोनों अभावों को भूल जाता है, इसलिये दो द्रव्यों में एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्व होता है।

प्रश्न (३३७)–वर्तमानमें सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ; उसमें जो अभाव लागू हो वह समझाओ।

उत्तर—सम्यग्दर्शनपर्याय का मिथ्यादर्शन पर्याय में **प्रागभाव,** और तत्पश्चात् श्रद्धा गुण में से नई-नई पर्यायें हों उनमें वर्तमान सम्यग्दर्शन पर्याय का अभाव—वह **प्रध्वंसाभाव है।**

[शरीर, द्रव्यकर्म, देव गुरु, शास्त्रादि सर्व परपदार्थों में उस सम्यग्दर्शन पर्यायका अत्यन्ताभाव है, अर्थात् शरीर द्रव्यकर्मादिसे सम्यग्दर्शन पर्याय की उत्पत्ति नहीं है।]

प्रश्न (३३८)–घातिकर्मके (ज्ञानावरण कर्मके) नाशसे केवलज्ञान होता है—यह मान्यता ठीक है ?

उत्तर—नहीं; क्योंकि कर्म और ज्ञानके बीच अत्यन्ताभाव है। जीव जब शुद्धोपयोग द्वारा केवलज्ञान दशा प्रगट करे तब घाति द्रव्य कर्मका स्वयं आत्यन्तिक क्षय होता है। घातिकर्मके (ज्ञानावरण कर्मके) क्षय से केवलज्ञान होता है—यह तो निमित्त का ज्ञान कराने के लिये व्यवहारनयका कथन है।

प्रश्न (३३९)–आत्मा परका कार्य कर सकता है—ऐसा माननेवाले ने कौनसा अभाव तथा कौन-सा गुण नहीं माना ?

उत्तर—अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्व गुणको नहीं माना।

प्रश्न (३४०)–कर्मोदय से जीवको मिथ्यात्व और रागादि होते हैं —ऐसा सचमुच माननेवाला किस अभाव को तथा किस गुणको भूलता है ? और उसका कारण क्या ?

उत्तर—वह अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्व गुणको भूलता है, क्योंकि एक द्रव्यका (कर्मका) दूसरे द्रव्यमें (जीवके मिथ्यात्वादि भावों में) अत्यन्ताभाव होनेसे कर्मोदयके कारण जीवमें कोई विकार नहीं हो सकता। कर्मोदयसे जीवको विकार होनेका कथन आये वहाँ समझना चाहिये कि—"ऐसा नहीं है" लेकिन निमित्त का ज्ञान कराने के लिये वह व्यवहार का कथन है; निमित्तसे उपादान का कार्य होता है ऐसा ज्ञान करानेके लिए वह कथन नहीं है।

प्रश्न (३४१)–कर्मके उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षय से जीवमें सचमुच (निश्चयसे) औदयिक औपशमिकादिभाव होते हैं—ऐसा माने वह किस अभावको तथा किस गुणको भूलता है ?

उत्तर—वह अत्यन्ताभाव और अगुरुलघुत्व गुणको भूलता है। (विशेष स्पष्टीकरण के लिए देखो, प्रश्न नं० ३४० का उत्तर।)

प्रश्न (३४२)–शरीरकी क्रियासे (व्रत, उपवास, पूजादिमें होनेवाली शरीरकी क्रियासे) मोक्षमार्ग की साधना होती है–ऐसा माननेवाला किस अभाव को भूलता है ?

उत्तर—शरीर की क्रिया पुद्गल द्रव्य की पर्याय है और मोक्षमार्ग जीव द्रव्यकी पर्याय है; उन दोनों के बीच अत्यंताभाव है; उसे वह भूलता है।

मोक्षमार्ग स्वद्रव्याश्रित शुद्ध पर्याय है, इसलिये स्वद्रव्यके आश्रयरूप एकाग्रतासे ही मोक्षमार्ग की साधना हो सकती है। जहाँ वीतरागभावरूप सच्चा मोक्षमार्ग हो वहाँ बाह्य—नग्न निर्ग्रंथदशा तथा महाव्रतादि २८ मूलगुणोंके जो विकल्प उस भूमिका में सहचररूपसे होते हैं वे निमित्त कहलाते हैं।

प्रश्न (३४३)–निमित्तसे वास्तवमें नैमित्तिक (-कार्य) होता है–ऐसा माननेवाला किस अभाव को भूलता है ?

उत्तर—(१) किसी भी एक जीवके निमित्तसे वास्तवमें दूसरे जीव का कार्य होता माने अथवा जीवके निमित्तसे पुद्गलका (शरीरादिकका) कार्य होना माने वह अत्यंताभावको भूलता है।

(२) एक पुद्गल अथवा अनेक पुद्गलों की पर्यायों के निमित्त से वास्तवमें दूसरे पुद्गलों की पर्यायें होती हैं—ऐसा जो मानता है वह अन्योन्याभावको भूलता है।

प्रश्न (३४४)–आत्माका ज्ञान वह निश्चय और शरीरकी क्रिया करना वह व्यवहार–ऐसा माननेवाला किस अभावको तथा किस गुणको भूलता है ? वह साततत्त्वोंमें किस भेदको नहीं मानता।

उत्तर—(१) वह अत्यंताभाव और अगुरुलघुत्वपने को भूलता है।

(२) शरीर पुद्गलपरमाणु द्रव्यकी अवस्था होने से उसकी क्रिया (अवस्था) जीव कर सकता है–ऐसा माननेवाला सात तत्त्वोंमेंसे जीव और अजीव तत्त्वकी भिन्नताको नहीं समझता।

प्रश्न (३४५)–जीव परद्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव को अनुकूल अथवा प्रतिकूल मानता है तो वह किस अभाव को भूलता है ?

उत्तर—वह अत्यंताभावको भूलता है।

प्रश्न (३४६)–इससे वास्तवमें समझें क्या ?

उत्तर—कोई भी परद्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव किसी जीवके लिये अनुकूल या प्रतिकूल हैं ही नहीं, वे तो मात्र ज्ञेय ही हैं। वास्तवमें अज्ञान राग-द्वेषरूप मलिनभाव जीवको अपनेलिये प्रतिकूल हैं; व निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और वीतरागभाव ही अपने लिये अनुकूल हैं।

मुद्रक—कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज